सरदार भगतसिंह

सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पुस्तकालय

इलाहाबाद

वर्ग संख्या ९५५.०३८५

पुस्तक संख्या सुरे त्रौ

क्रम संख्या १०७७५

क्रांतिकारी भगतसिंह

[कथात्मक जीवनी]

सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव

साहित्य केन्द्र प्रकाशन

(उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशक एवं विक्रेता)
ई-5/20, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051
फोन 2244650

सर्वाधिकार : प्रकाशकाधीन

प्रकाशक : ओउम्प्रकाश शर्मा
साहित्य केन्द्र प्रकाशन
ई-5/20, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

संस्करण : 1995

मूल्य : 60.00

कलापक्ष : भारती

आवरण : चड्ढा प्रिंटिंग प्रेस

मुद्रक : शान प्रिन्टर्स, दिल्ली-110032

KRANTIKARI BHAGAT SINGH
by Suresh Chandra Shrivastva

पिस्तौल और बम कभी इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है।"

—भगतसिंह

एक मूक श्रद्धांजलि

भारत मां के उस अमर लाल के नाम, जो केवल तेईस वर्ष की अवस्था में उस राज्य के सत्ताधीशों को हिला गया, जिनके राज्य में कभी सूर्य नहीं डूबता था—

भारत का इतिहास उसे भगतसिंह के नाम से याद करता रहेगा।

—सुरेश

"पिस्तौल और बम कभी इन्कलाब नहीं लाते,
बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों
की सान पर तेज होती है।"

—भगतसिंह

एक मूक श्रद्धांजलि

भारत मां के उस अमर लाल के नाम, जो केवल तेईस वर्ष की अवस्था में उस राज्य के सत्ताधीशों को हिला गया, जिनके राज्य में कभी सूर्य नहीं डूबता था—
भारत का इतिहास उसे भगतसिंह के नाम से याद करता रहेगा।

—सुरेश

क्रांतिकारी भगतसिंह क्यों ?

अमर शहीद, महान् क्रान्तिकारी भगतसिंह के ऊपर हिन्दी में कम पुस्तकें नहीं हैं, फिर यह पुस्तक क्यों लिखी गई ? क्यों प्रकाशित की गई ? ये प्रश्न उठ सकते हैं। समाधान मैं कर रहा हूं। मैंने हिन्दी की बहुत-सी पुस्तकें देखी है। यह नहीं कहूंगा कि हिंदी में प्रामाणिक पुस्तकें नहीं हैं—लेकिन प्रामाणिकता में भी विवाद हैं। कुछ पुस्तकें अत्यधिक प्रामाणिक मानी जाती हैं, लेकिन वे मूल्य में अधिक होने के कारण आम लोगों के लिये उपलब्ध नहीं हो पातीं। जो छोटी पुस्तकें हैं, उनमें से बहुत-सी बिलकुल ही प्रामाणिक नहीं हैं। उन्हें पढ़ने से भ्रांतियां फैलती हैं।

अभी हाल ही में मैंने पॉकिट बुक्स में दो पुस्तकें भगतसिंह के ऊपर देखीं। दुःख के साथ कहना पड़ता है, न उनके सिर का पता है, न पैर का। केवल इधर-उधर की पढ़ी घटनाओं और दंतकथाओं पर आधारित ये पुस्तकें हैं। इन्हें पढ़ने से क्या लाभ होगा ? केवल किंवदन्तियों को ही बल मिलेगा।

ऐसे में एक कम मूल्य पर प्रामाणिक पुस्तक की अति आवश्यकता थी। काम बहुत मुश्किल था। जो कुछ भी लिखना था, वह प्रामाणिक होना चाहिए था, तभी इस पुस्तक की उपयोगिता होती। प्रयत्न किये, मैंने पुस्तक लिखी। अब यह आपके ऊपर निर्भर है कि पुस्तक के बारे में निष्पक्ष राय दें।

विनीत : सुरेश

एक

पंजाब का जिला लायलपुर जहां वीरों ने जन्म लिया, जहां की धरती ने देश को जाने कितने ऐसे बहादुर लाल दिये, जिन्होंने भारत मां का मस्तक गौरव से ऊंचा कर दिया। लाला लाजपतराय इसी धरती के बेटे थे। गुरु गोविंदसिंह ने जन्म लेकर भारत को एक नये धर्म की शिक्षा दी।

इसी लायलपुर के एक गांव बंगा में सिक्ख खानदान रहता था। इसी वंश में सरदार अर्जुनसिंह पैदा हुए थे। अंग्रेजी शासन के दिन थे। गोरी सरकार के खिलाफ एक शब्द भी कहना मौत को खुला आह्वान देना था। लोग अंग्रेजों की चाटुकारिता करते थे और यश, सम्मान पाते थे, लेकिन सरदार अर्जुनसिंह ऐसा कभी नहीं करते थे। यौवन के आरम्भ से ही उनके मन में अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा जाग उठी थी। वह चाहते थे कि देश से अंग्रेजों का नाम मिटा दें। उनके भाई सरदार बहादुरसिंह और दिलबागसिंह अंग्रेजी सरकार की जी-हजूरी करके खूब धनवान हो गये थे। वे दोनों ही अपने भाई सरदार अर्जुनसिंह को बेवकूफ समझते थे और कहते थे कि अर्जुनसिंह एक दिन भीख मांगेगा, जो आदमी वक्त का फायदा न उठा सके, वह अन्त में ठोकर खाता ही है।

लेकिन सरदार अर्जुनसिंह को इन बातों की कोई परवाह नहीं थी। वह देश-प्रेम में मतवाले होकर अपना कार्य करते रहे।

इन्हीं सरदार अर्जुनसिंह के यहां तीन बच्चों का जन्म हुआ था। सरदार अर्जुनसिंह ने क्रमानुसार अपने बेटों का नाम इस प्रकार रखा—सरदार किशनसिंह, सरदार अजीतसिंह और सरदार स्वर्णसिंह। बाप की बहादुरी, देशभक्ति, निडरता, स्पष्टवादिता इन लड़कों में भी कूट-कूटकर भरी थी और सरदार अर्जुनसिंह को लगा कि उनकी तपस्या पूरी हो गई, क्योंकि उन्होंने चाहा था कि भले ही उन्हें इतना भी धन न मिले कि अपने परिवार का भरण-पोषण ढंग से कर सकें, लेकिन उनके जो पुत्र हों

वे ऐसे हों जो उनका नाम ऊंचा कर सकें। जिन्हें इंगित कर वह गर्व से कह सकें—ये मेरे पुत्र हैं, जिन्होंने देश के लिए अपनी जानें कुर्बान कीं। ईश्वर ने उनकी आत्मा की पुकार सुन ली थी और उनके तीनों पुत्र उन्हीं के अनुरूप थे।

1904 और 1905 का वर्ष भारत के इतिहास में नया मोड़ लेकर आया था। इसी वर्ष बंग-भंग हुआ था। लार्ड कर्जन के विरुद्ध पूरे देश में रोष की लहर फैली थी। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय ने बंग-भंग के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया था। सरदार अजीतसिंह ने लाला लाजपतराय के साथ मिलकर पंजाब के जन-जीवन में विरोध आंदोलन का संचालन किया था। इस आंदोलन में सरदार किशनसिंह और सरदार स्वर्णसिंह ने भी भाग लिया था। तीनों भाई जिस समय भाषण देने लगते तो ऐसा लगता, जैसे उनकी आवाज से अग्नि धारायें प्रवाहित हो रही है, जो पूरे ब्रिटिश साम्राज्य को जलाकर नष्ट कर देगी।

1907 में, 1818 का तीसरा रेगुलेशन काम में लाया गया। इस रेगुलेशन से ब्रिटिश सरकार को बहुत लाभ था। पूरे देश मे इस रेगुलेशन के विरुद्ध विद्रोह हुए। विशेष तौर से बंगाल और पंजाब में लोगों ने इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रियायें व्यक्त कीं। बड़े पैमाने पर प्रदर्शन हुये। सरकार भला इस तरह का विद्रोह एवं विरोध-प्रदर्शन कैसे सह सकती थी। उसने इसे दबाने के लिये सख्त कदम उठाए। लोगों की गिरफ्तारियां हुई। पंजाब में लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। सरदार अजीतसिंह को बिना उनके मामले की जांच किये हुए कैद की सजा दी गई। उन्हें बर्मा भेज दिया गया। भला ऐसे समय सरदार अजीतसिंह के दोनों भाई सरदार किशनसिंह और सरदार स्वर्णसिंह कैसे चुप बैठ सकते थे! उन लोगों ने गोरे शासन के खिलाफ जनता के सामने उत्तेजनात्मक भाषण दिये। स्वाभाविक था कि सरकार की कुपित दृष्टि इन लोगों पर भी पड़ती, इन दोनों भाइयों को भी गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया।

इस समय सरदार किशनसिंह की पत्नी गर्भवती थीं।

एक दिन स्वर्णसिंह ने अपने बड़े भाई सरदार किशनसिंह से जेल में

पूछा—"भापा, मेरे भतीजा होगा या भतीजी ?"

सरदार किशनसिंह ने उत्साह से अपने भाई के कंधे पर हाथ मारकर कहा—"ओए स्वर्णा, वाह गुरु की कृपा से मेरे को अब की लड़का ही होगा और ऐसा लड़का होगा जो मेरा नाम ऊंचा करेगा।"

और सरदार किशनसिंह की वाणी सत्य हुई।

सन् 1907 का अक्तूबर मास। शनिवार का दिन था। पूर्व में ऊषा मुस्करा रही थी। हर ओर प्रकृति नये प्रभात का आह्वान कर रही थी। ऐसे में सरदार किशनसिंह की पत्नी प्रसव-पीड़ा से छटपटा रही थी और बाल सूर्य की प्रथम किरण ने जब पृथ्वी का आलिंगन किया तो सरदार किशनसिंह का घर एक नये शिशु के रुदन से भर गया।

बालक का नामकरण हुआ—सरदार भगतसिंह !

सरदार किशनसिंह को जेल में जब यह समाचार मिला तो वह खुशी से उछल पड़े और उन्होंने अपने छोटे भाई सरदार स्वर्णसिंह से कहा—"मैं तुझसे कहता था न कि लड़का ही होगा। देख मेरी बात सच हुई और यह भी लिख ले कि यह लड़का खानदान का नाम रोशन करेगा।"

और इतिहास गवाह है कि सरदार भगतसिंह ने अपने खून से भारत की धरती को सींचा और अपने खानदान का ही नहीं, वरन् देश का नाम पूरे विश्व में ऊंचा किया। आने वाली पीढ़ियां सरदार भगतसिंह के बलिदान से प्रेरणा लेती रहेंगी। वक्त हमेशा उनकी कहानी दोहराता रहेगा और भारत माता हमेशा अपने दुलारे लाल की स्मृति में आसू बहाती रहेगी।

बालक भगतसिंह बढ़ने लगे। उनका पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से होता रहा। मां श्रीमती विद्यावती उन्हें बहुत चाहती थीं। हालांकि भगतसिंह से बड़े उनके एक भाई और थे—जगतसिंह ! लेकिन भगत-सिंह में न जाने क्या था कि मां देखने लगतीं तो देखती ही रह जातीं।

उनकी आंखों की प्यास बुझने को ही न आती थी।

समय पर भगतसिंह को प्राइमरी स्कूल में भर्ती किया गया। दोनों भाई भगतसिंह और जगतसिंह साथ-साथ पढ़ने जाने लगे। जिस अवस्था में दूसरे बालकों को पढ़ना या खेलना-कूदना अच्छा लगता है, उस अवस्था में भगतसिंह का हृदय जाने कहां-कहां भटका करता। उनका मन पाठशाला की तंग छोटी कोठरियों से ऊब जाता और वह विस्तृत व खुले मैदान में भाग खड़े होते। कलकलाती, उछलती नदियों का अबाध संगीत सुनना, निर्द्वन्द्व पक्षियों का उन्मुक्त आकाश की ओर उड़ते रहना और खुले मैदान में बैठकर खुली हवा का आह्लादकारी स्पर्श लेना उन्हें बहुत भाता था। उनकी तबीयत होती थी कि आकाश में उड़ते हुए इन उन्मुक्त पक्षियों के साथ वह भी उड़ चलें और किसी ऐसी जगह पहुंच जायें जहां कोई बंधन न हो, कोई रोक न हो।

अक्सर ऐसा होता कि कक्षा में पढ़ाई चलती होती और भगतसिंह चुपचाप वहा से मैदान में खिसक जाते। जगतसिंह जब भाई को अनुपस्थित पाते तो उठकर बाहर आते और देखते कि भगतसिंह मैदान में बैठे हैं। वह उनकी बांह पकड़कर उठाने का प्रयास करते और कहते—"तू यहां क्या कर रहा है? वहां गुरुजी पढ़ा रहे हैं और तू यहां तमाशा कर रहा है! चल उठ!"

भगतसिंह मुस्कराकर उत्तर देते—"भापाजी! मुझे यहीं अच्छा लगता है।"

"तू यहां क्या करता है?"

"कुछ नहीं! बस चुपचाप मैदान को देखा करता हूं।"

जगतसिंह को आश्चर्य होता—"मैदानों को! मैदान में तुझे क्या दिखाई पड़ता है?"

भगतसिंह मुस्कराते—"दिखाई तो कुछ भी नहीं पड़ता भापाजी! यह जरूर लगता है कि इस खुले और आजाद मैदान की तरह मैं भी आजाद हो जाऊं।"

जगतसिंह झुंझला उठते—"अगर तुझे यही सब करना था तो स्कूल में दाखिला ही क्यों लिया था? खेती-बाड़ी करता। अगर तू पढ़ेगा नहीं

तो गुरुजी मारेंगे।"

"क्यों मारेंगे ?" भगतसिंह भोलेपन से पूछते।

"जब तू पाठ नहीं याद करेगा तो गुरुजी तुझे मारेंगे नहीं तो क्या प्यार करेंगे ?"

"लेकिन भापा जी ! पाठ तो किताबों में होता है, उसे पढ़कर मैं याद कर लूंगा।"

और सचमुच भगतसिंह की स्मृति बहुत तेज थी। वह हमेशा एक बार पढ़कर पूरा पाठ कण्ठस्थ कर लेते थे।

भगतसिंह बढ़ते गये। उनकी विशेषतायें मुखर होती गईं। अन्य बालकों की अपेक्षा वह बहुत अधिक साहसी, निडर और स्पष्टवक्ता थे।

लेकिन अचानक 11 वर्ष की अवस्था में उनके मन को बहुत गहरा सदमा पहुंचा। उनके भाई जगतसिंह जिन्हें भगतसिंह बहुत प्यार करते थे, को मौत के पंजे ने धर दबोचा। इस सदमे का असर भगतसिंह के दिल पर गहराई से पड़ा। वह जीवन-भर अपने भाई जगतसिंह की स्मृति भुला नहीं पाए।

इस घटना के बाद सरदार किशनसिंह लाहौर के पास नवाकोट चले आए। उनकी कुछ जमीन-जायदाद थी। भगतसिंह अपनी प्रारंभिक शिक्षा समाप्त कर चुके थे और इस समय उन्हें हाईस्कूल में भर्ती कराने की आवश्यकता थी। सिक्खों में यह परंपरा थी कि लड़कों को खालसा स्कूल में ही भेजते थे, लेकिन खालसा स्कूल के अधिकारियों का झुकाव राजभक्ति की ओर अधिक था। वहां के अधिकारी अंग्रेजों को बहुत सम्मान देते थे। सरदार किशनसिंह को यह बिलकुल पसंद न था। उनके हृदय में आजादी का सागर लहराता था और वह चाहते थे कि उनका लड़का भगतसिंह ऐसे वातावरण में पढ़े, जहां गुलामी की कोई भावना न पनपे। अंत में उन्होंने निश्चय किया कि भगतसिंह को लाहौर के दयानंद ऐंग्लोवैदिक स्कूल में भरती किया जाए। भगतसिंह ने आगे की शिक्षा के लिए उसी स्कूल में प्रवेश लिया।

इसी स्कूल से उन्होंने मैट्रिकुलेशन पास किया, इसके बाद भगतसिंह नेशनल कालेज लाहौर में पढ़ने लगे। कालेज में प्रसिद्ध क्रांतिकारी

सुखदेव और यशपाल से उनकी मित्रता हुई और आगे चलकर ये तीनों ही अंतरंग मित्र बन गये। क्रांतिकारी जीवन में इन तीनों ही व्यक्तियों ने जो अभूतपूर्व कार्य किया, वह भारतीय इतिहास में अमर बनकर रह गया है।

जब भगतसिंह नवीं कक्षा में पढ़ रहे थे, उस समय कानपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। भगतसिंह इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। उनके मन में यहीं से देशभक्ति की भावना पनपने लगी। उनकी अवस्था 14 वर्ष की भी नहीं हुई थी, अभी उनके खेलने-खाने के दिन थे, लेकिन जिस बाप के वह पुत्र थे, वह आजाद जीवन व्यतीत करते आये थे। भगतसिंह का पूरा खानदान देशभक्ति के रस में सराबोर था, इसीलिए इतनी अल्पायु में ही भगतसिंह के दिल-दिमाग पर आजादी का नशा छा गया और वह देश-सेवा के सपने देखने लगे। उन्होंने बड़े उत्साह से पंजाब की क्रांतिकारी संस्थाओं में भाग लेना शुरू किया, लेकिन जाने क्यों उन्हें यह बिलकुल पसंद नहीं था कि गोरे शासक निःशस्त्र, निरीह भारतीय जनता पर आक्रमण करें, उन पर गोलियां बरसायें, उन पर लाठी प्रहार करें और बदले में भारतीय जनता मूक प्रदर्शन करे, नारे लगाए और असहयोग आंदोलन करे। वह इस बात में विश्वास करते थे कि खून का बदला खून होना चाहिए। अगर अंग्रेज अनेक प्रकार से भारतीय जनता के साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं तो उसके बदले मे भारतीयों को भी उनके रक्त की होली खेलनी चाहिए। उन्हें नारों पर जरा भी विश्वास नहीं था। इसके बाद भी वह कांग्रेस कांफ्रेंस में भाग लेते थे।

भगतसिंह के ऊपर उनके चाचा अजीतसिंह का बहुत प्रभाव था। वास्तव में अपने भाइयों में अजीतसिंह सबसे अधिक विद्रोही और क्रांतिकारी स्वभाव के थे। उन्हें भारत में अपने स्वभाव के अनुरूप वातावरण न मिला, इसलिए वह विदेश चले गए थे। वहीं रहकर उन्होंने भारत में क्रांति करने की चेष्टा की थी। उस समय तक जेल में तपस्या करके आत्मिक शक्ति द्वारा स्वराज्य प्राप्त कर लेने के गांधीवादी सिद्धांत का विकास नहीं हो पाया था, इसलिए सरदार अजीतसिंह पुलिस के हाथ पड़कर जेल में सड़ते रहने के बजाय फरार होकर अपना काम करते

रहे। गिरफ्तारी से बचने के लिए अम्बाप्रसाद सूफी में साथ भारत के अनेक भागों में और नेपाल की तराई आदि में फिरते रहे और फिर देश में कुछ कर पाने का अवसर न देख, विदेश चले गये। विदेश में भी वे लाला हरदयाल, राजा महेंद्रप्रताप और बरकतुल्ला आदि दूसरे प्रमुख क्रांतिकारियों के सहयोग से जैसे-तैसे भारत में राजनैतिक क्रांति कर डालने की चेष्टा करते ही रहे। कुछ लोगों का विचार है कि दूसरे महा-युद्ध के समय रोम के रेडियो पर जो ब्रिटिश-विरोधी प्रचार हिंदुस्तानी में होता था और जिसकी भाषा से ब्रिटिश साम्राज्यशाही और भारतीय ब्रिटिश सरकार के प्रति अदम्य घृणा उगली पड़ती थी, वह सरदार अजीतसिंह के ब्रिटिश से आमरण टक्कर लेते रहने का ही परिणाम था। सरदार अजीतसिंह के लिए 1948 से पहले भारत लौट सकना सम्भव न हुआ। जिस समय वे लौटे, अत्यन्त वृद्ध और निरंतर संघर्ष से जीर्ण हो चुके थे। शीघ्र ही उनका देहांत हो गया।

सिंहावलोकन, यशपाल, पृष्ठ 31

भगतसिंह के ऊपर अपने चाचा अजीतसिंह का बहुत प्रभाव पड़ा था। वह भारत से सम्पूर्ण ब्रिटिश शासन को समाप्त कर देने के सपने देखा करते थे, इसलिए वह कांग्रेस पार्टी की कार्यवाहियों में भाग लेते थे। हालांकि उन्हें इस तरह ठण्डी कार्यवाही बिलकुल पसंद न थी और वे कुछ ऐसा चाहते थे जिसमें कुछ विद्रोह करने का अवसर मिले लेकिन रास्ता निकल नहीं रहा था।

भगतसिंह के पिताजी सरदार किशनसिंह भी वैसे तो विचारों से देशभक्त थे और चाहते थे कि गोरे शासक भारत को आजाद करें, लेकिन उन्हें यह पसंद न था कि उनका लड़का भगतसिंह केवल देशभक्ति के ही गीत गाए। वह चाहते थे कि देश-भक्ति के साथ ही भगतसिंह घर-परिवार की जिम्मेदारियां भी समझे और पढ़-लिखकर उनके कार्य में सहयोग दे।

लेकिन भगतसिंह के ऊपर इन बातों का कोई प्रभाव न पड़ा। उनके मन में प्रारम्भ से ही क्रांति की आग जल उठी थी और वह इससे विमुख नहीं होना चाहते थे। उनके पिताजी अक्सर उन्हें इसके लिए डांटते-

फटकारते, लेकिन भगतसिंह के ऊपर इसका कोई असर नहीं होता था।

एक तो चाचा अजीतसिंह के व्यक्तित्व का स्पष्ट असर था ही, उसके साथ ही साथ इनकी शिक्षा नेशनल कालेज लाहौर में हुई। कालेज का पूरा वातावरण देशभक्ति से प्रभावित था। उसका स्पष्ट असर भगतसिंह के विचार एवं व्यवहार में हुआ और उनकी क्रांतिकारी प्रवृत्तियां उग्र होती चली गयीं।

पंजाब नेशनल कालेज के वातावरण में राजनीतिक प्रवृत्तियों को छिपाने की आवश्यकता नहीं थी, इस कालेज की स्थापना का उद्देश्य ही कांग्रेस के कार्यक्रम द्वारा स्वराज्य प्राप्ति के लिए काम करने वाले योग्य कार्यकर्ता तैयार करना था। परंतु सभी विद्यार्थियों ने कांग्रेस के कार्य में जीवन उत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा कर ली हो, यह बात भी नहीं थी। लाला लाजपतराय का उद्देश्य इस कालेज को स्थापित करने में यही था कि युवकों में देशभक्ति की भावना पनपे। यहां का वातावरण सरकारी यूनिवर्सिटी के कालेजों से भिन्न था। दूसरे कालेजों मे साधारणत: शिक्षा पाने और परीक्षा पास करने का उद्देश्य कल्पना में निश्चित कोई नौकरी पाना रहता, नेशनल कालेज में यह बात नहीं थी। यहां शिक्षा का उद्देश्य साधारणत: अध्ययन ही था। शौक और फैशन की वैसी लगन और प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी जैसी कि दूसरे कालेजों में रहती है, इस विषय में दृष्टिकोण सामान्य था। विद्यार्थी प्राय: बिना टीप-टाप के ही रहते थे। खद्दर की ओर प्रवृत्ति जरूर थी, परंतु मशीन का कपड़ा भी चल जाता था। गांधी आश्रम जैसी प्रवृत्ति नहीं थी। अर्थात् कम से कम कपड़ों में निर्वाह करने, सब काम अपने हाथ से करने और भोजन में बगैर पके शाक खाने को महत्व दिया जाता था। 'प्रार्थना' और 'संध्या' के लिये कोई अनुशासन नहीं था।

भगतसिंह को नेशनल कालेज का वातावरण बहुत अच्छा लगा। कुछ दिनों बाद उनकी मित्रता यशपाल और सुखदेव से हुई और यह मित्रता घनिष्ट होती चली गई। भगतसिंह वैसे तो पढ़ने में तेज थे, लेकिन उनका दिमाग पढ़ाई से ज्यादा आंदोलनों की ओर लगा रहता। वैसे उनका स्वभाव बहुत हंसमुख था और अपने साथियों से अक्सर मजाक किया करते।

भारतीय इतिहास के अध्यापक थे—प्रोफेसर सौंधी ! वह हमेशा लेक्चर देते समय ऊंघ जाते थे। कालेज के लड़के अक्सर उनका मजाक बनाया करते। कालेज में शरारती लड़कों का एक गुट था, उसमें भगतसिंह भी सम्मिलित थे। अक्सर प्रोफेसर सौंधी की क्लास में लड़के अप्रासंगिक प्रश्न करके उन्हें परेशान करते।

एक बार प्रोफेसर सौंधी अशोक के शासनकाल के ऊपर लेक्चर दे रहे थे, आदत के मुताबिक वह बीच-बीच में ऊंघ जाते थे। भगतसिंह, यशपाल और सुखदेव की तबीयत क्लास में नहीं लग रही थी, लेकिन प्रोफेसर के रहते वे लोग बाहर भी नहीं जा सकते थे, अचानक भगतसिंह ने खड़े होकर पूछा—"श्रीमान, सुना है कि अंग्रेज भारत में भिक्षुक बनकर आए थे और बाद में यहां के शासक बन गये। क्या यह सत्य है ?"

प्रोफेसर सौधी उस समय अशोक की न्यायप्रियता के बारे में बता रहे थे। उन्हें इस तरह के सवाल से क्रोध आ गया—"तुमसे कितनी बार कहा है कि तुम मेरे लिंक आफ थाट को डिस्टर्ब न किया करो, लेकिन तुम सुनते नहीं हो···।"

उनकी बात पूरी होने से पहले ही सुखदेव ने उठकर कहा—"सर ! यह भगतसिंह बिल्कुल नालायक है। कहां आप शाहजहां के शासनकाल के बारे में पढ़ा रहे थे और कहां यह अंग्रेजों की बातें ले बैठा···।"

"ह्वाट डू यू मीन बाई शाहजहां ? मैंने कब शाहजहां का नाम लिया ?" प्रोफेसर साहब गरज पड़े।

तभी यशपाल ने उठकर कहा—"सर, मैं इन दोनों से कह रहा था, मोहम्मद तुगलक के पागलपन के बारे में बता रहे थे, लेकिन इन दोनों को मेरी बात पर विश्वास नहीं आया।"

प्रोफेसर सौंधी एकदम चीख पड़े—"तुम सब एकदम नालायक हो। मैं तुम लोगों को पढ़ा नहीं सकता।" और वह अपनी किताबें और रजिस्टर समेटकर बाहर चले गये। सभी लड़के खिलखिला पड़े और क्लास से भाग खड़े हुए।

ऐसा अक्सर होता। प्रोफेसर सौंधी को भगतसिंह और उनके साथी परेशान करते और वह क्लास छोड़ देते। इसी तरह एक प्रोफेसर मेहता

भी थे। वह पढ़ाते तो बहुत लगन से थे, परंतु उनका हिन्दी का ज्ञान बहुत परिमित था, हिन्दी शब्दों का उच्चारण और भी विचित्र। किसी भी शब्द का हिन्दी पर्यायवाची शब्द उनसे पूछना मजाक आरम्भ करने के लिए काफी था और फिर ठेठ पंजाबी का कोई शब्द उन्हें सुझा देना। दूसरे विद्यार्थियों के खिलखिला पड़ने पर मेहता साहब परेशान हो जाते और सबसे पहले भगतसिंह के एक साथी झण्डासिंह की ओर संकेत कर हुक्म देते—"गेट आउट आफ दि क्लास।" उसके बाद यशपाल की बारी आती, फिर सुखदेव की, फिर भगतसिंह और फिर दूसरे दो-एक साथियों की।

इसी तरह दिन बीत रहे थे। सरदार किशनसिंह देख रहे थे कि उनके लड़के भगतसिंह का दिल घर की चारदीवारी में बिल्कुल भी नहीं लगता था और वह किसी तरह की जिम्मेदारी भी नहीं समझते थे।

एक दिन रात में भगतसिंह देर से घर लौटे। कहीं कांग्रेस कार्यकर्ताओं की मीटिंग थी और भगतसिंह उसमें भाग लेने गये थे। परीक्षा के दिन निकट थे, फिर भी भगतसिंह इसकी ओर ध्यान नहीं दे रहे थे। सरदार किशनसिंह ने उन्हें समझाने की बहुत चेष्टा की थी, लेकिन भगतसिंह सुनकर भी अनसुना कर देते थे। सरदार किशनसिंह ने निश्चय कर लिया कि वह भगतसिंह से इस बात का फैसला करके ही रहेंगे कि उन्हें पढ़ना है अथवा नहीं। रात के लगभग ग्यारह बजे भगतसिंह ने घर में प्रवेश किया। सरदार किशनसिंह गुस्से में भरे हुए बैठे थे। वह एकदम बरस पड़े—"क्यों बे नवाबजादे! इस वक्त आने का क्या मतलब है? अगर तुझे पढ़ना नहीं है तो घर बैठ। इस तरह रुपये और समय बर्बाद करने से क्या फायदा?"

भगतसिंह ने शान से उत्तर दिया, "पढ़ाई तो हमेशा चलती रहेगी, लेकिन देश के प्रति भी कुछ जिम्मेदारियां हैं।"

"मैं तुमसे लेक्चर सुनना नहीं चाहता। या तो ठीक तरह से पढ़ या फिर पढ़ाई छोड़ दे। मैं यह सिलसिला बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

भगतसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया और चुपचाप अपनी पढ़ाई में लग गये। इस तरह के झगड़े और कहा-सुनी अक्सर होते रहते थे, क्योंकि

सरदार किशनसिंह यह तो कभी नहीं कह सके कि उनका पुत्र देश की स्वतंत्रता के लिये यत्न न करे, लेकिन उनका आग्रह था कि अपने घर की चिन्ता किए बिना केवल उसी में कूद पड़ना मूर्खतापूर्ण और अव्यवहारिक है। आदमी को देश-भक्ति के साथ-साथ घर की जिम्मेदारी भी समझनी चाहिए, लेकिन भगतसिंह का विश्वास था कि एक आदमी दो नावों पर पांव रखकर नहीं चल सकता। पिता-पुत्र के इस मतभेद से काफी झगड़े हुए, लेकिन भगतसिंह के विचारों में कोई परिवर्तन न आ सका।

तभी भारतीय राजनैतिक जीवन में और साथ ही सामाजिक जीवन में एक बहुत बड़ी क्रांति हुई। एक ऐसा भूचाल आया, जिसने भारतीय जन-जीवन को नई दिशा दे दी। सन् 1919 का वर्ष···गोरेशाही ने रौलट बिल पास कर दिया था और पूरा देश इसके विरोध के लिए जाग उठा था। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह लीग द्वारा आंदोलन प्रारम्भ कर दिया था। भारतीय जनता ने उन्हें अपना नेता स्वीकार कर लिया था। रौलेट कानून के विरोध में जुलूस निकाला गया था। भारत के इतिहास में प्रथम बार इतना विशाल एवं संगठित जुलूस निकला था। उसे देखने से ही लगता था कि भारतीय जनता के मन में गोरे शासन के विरोध में कितना तीव्र आक्रोश भरा हुआ है। पंजाब की सड़कों पर तीन मील लम्बा बढ़ रहा था। सड़कें बिल्कुल ठसाठस भरी हुई थीं। मातम का प्रदर्शन करने के लिए सभी लोग नंगे सिर थे। लोगों के हाथों में काले झंडे थे और लगता था काले झंडों की आंधी-सी आ गई है। जनता उस समय शांतिमय सत्याग्रह के दाव-पेच नहीं जानती थी। राजनीति में इन शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ था। जनता सीधे-सादे ढंग से विदेशी शासन के विरुद्ध असंतोष और विरोध प्रकट कर रही थी।

जुलूस के साथ ही हड़ताल भी हुई। हड़ताल सात दिन तक जारी रही। किसी तरह का दबाव नहीं था, फिर भी लोग अपनी इच्छा से पूरी तरह हड़ताल किए हुये थे। पुलिस की गारदें जगह-जगह जबरदस्ती दुकानें खुलवा देतीं, पुलिस के हटते ही जनता की सामूहिक भावना से दुकानें बन्द हो जाती। लाहौर में सात दिन तक पूरी हड़ताल निभा देना आसान बात नहीं थी। इसके कई कारण थे। प्रथम तो वहां हजारों तंदूर

और तबियां थीं। हजारों व्यक्ति इन दुकानों पर पेट भरते थे। हड़ताल के उन दिनों में ये तबियां और तंदूर बंद थे, परन्तु बाजारों और गलियों में जगह-जगह बड़े-बड़े अस्थाई चुल्हे बनाकर बड़ी-बड़ी देगों में दाल और बड़े-बड़े तवों पर रोटी सेंकी जा रही थीं। रोटियां सेंकने का काम प्रायः अपने-अपने मौहल्लों की मध्यम श्रेणी की स्त्रियां स्वेच्छा से कर रही थीं। जो चाहता मुफ्त में दाल-रोटियां खा सकता था। लेकिन न कोई बिक्री हो रही थी और न कोई मजदूरी। घर-गृहस्थी के लोगों की पारिवारिक आवश्यकतायें पूरा करने की ओर किसी का ध्यान नहीं था। विदेशी शासन द्वारा दमन के विरोध में हुई हड़ताल को सफल बनाना एक सामाजिक कर्तव्य बन गया था। जगह-जगह भीड़ की टुकड़ियां रौलेट कानून का सियापा करती फिर रही थीं—"हाय-हाय रौलेट बिल! हाय-हाय रौलेट बिल!" जगह-जगह सम्राट् जार्ज की अर्थियां जलाई जा रही थीं। पुलिस उन्हें तितर-बितर करने के लिए लाठी चार्ज करती। भीड़ भागकर पुलिस पर ईंट-पत्थर की वर्षा कर अपना विरोध प्रकट करती। बीसियों जगह गोली चली, परन्तु हड़ताल जारी रही। शहर में फौजी कानून जारी कर दिया गया। सरकार को भारतीय पुलिस और फौज की राजभक्ति में संदेह होने लगा, इसलिए महत्त्वपूर्ण स्थानों पर प्रायः गोरी फौज तैनात कर दी गई। धड़ाधड़ गिरफ्तारियां हो रही थीं। सरकारी आज्ञा भंग करने पर बाजारों में खुलेआम बेंत लगाए जा रहे थे। हड़ताल खोल देने और जुलूस आदि न निकालने के जो ऐलान सरकार की ओर से जगह-जगह चिपकाए जाते, वह तुरन्त फाड़ डाले जाते। ये ऐलान जिन दुकानों और मकानों पर लगाए जाते, उनके मालिकों को ही इनकी रक्षा के लिये जिम्मेदार ठहराया जाता। इनके फटने पर उन्हें राजद्रोही समझ कर दण्ड दिलाया जा रहा था।

भगतसिंह के ऊपर इस आंदोलन और हड़ताल का बहुत प्रभाव पड़ा, हालांकि वह उस समय मात्र किशोर वय के ही थे। इसके बाद भी उत्तेजना से उनका अंग-अंग कांपता रहता था और वह कुछ करने और मरने के लिये एकदम उतावले हो रहे थे।

लेकिन अचानक ही गांधीजी को अपनी भूल मालूम हुई और पश्चा-

त्ताप करने के लिए उन्होंने हड़ताल तुरन्त स्थगित कर दी। जनता को इससे निराशा हुई। वह उस समय कुछ करने या मरने के लिए तैयार थी। इस प्रकार अचानक गतिरोध उसे पसन्द न था।

रौलेट कानून के विरुद्ध प्रदर्शनों और हड़तालों को रोक कर गांधी और कांग्रेस ने सरकार द्वारा किए गए दमन की जांच की जाने की मांग-प्रार्थना सरकार से आरम्भ की। कांग्रेस की यह मांग सरकार द्वारा स्वीकार न किये जाने पर असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय कई वर्ष विदेशावास के बाद उसी समय भारत लौटे थे। देश में राजनैतिक उत्साह देख उन्होंने पंजाब में असहयोग आंदोलन का नेतृत्व आरम्भ किया। पंजाब में उस आन्दोलन ने खूब उग्र रूप ले लिया। कांग्रेस ने सरकारी खिताबों, नौकरियों, अदालतों और स्कूल-कालेजों से असहयोग की पुकार की। खिताब, नौकरियां और अदालतें तो कम ही लोगों ने छोड़ी होंगी, परन्तु विद्यार्थियों ने स्कूल-कालेज बड़ी मात्रा में छोड़ दिये। इन्हीं असहयोगी विद्यार्थियों को योग्य राष्ट्रीय कार्यकर्ता बनाने के लिये लालाजी और पंजाब के कांग्रेसी नेताओं ने लाहौर में पंजाब नेशनल कालेज की स्थापना की थी।

ऐसे समय भला भगतसिंह कैसे चुप रह सकते थे। उनकी तो नस-नस में विद्रोह की आग जल रही थी। उन्होंने तुरंत पढ़ाई छोड़ दी और असहयोग आंदोलन में लग गये।

सन् 1922 में राष्ट्रीय आंदोलन फिर दब गया। गांधीजी ने सत्या-ह स्थगित कर दिया। इसके पहले गांधीजी ने घोषणा की थी कि ांदोलन का लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति है और वे 1921 से 1931 तक स्वराज्य लेकर ही रहेंगे।

जनता उनके इशारे पर चल रही थी। ब्रिटिश सत्ता के प्रति जनता में तीव्र आक्रोश था, अपने आपको मिटाकर भी जनता अंग्रेजों को भारत से भगाना चाहती थी। लेकिन गांधीजी ने जब एकाएक आंदोलन स्थगित करने की घोषणा की तो जनता के उत्साह पर जैसे बर्फ गिर पड़ी।

उन दिनों भगतसिंह नवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। गांधीजी की पुकार पर उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी और असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े।

आन्दोलन स्थगित होने पर पढ़ाई छोड़ने वाले छात्रों का बहुत बुरा हाल हुआ। वह न घर के रहे, न घाट के। जिन स्कूल-कालेजों से उन्होंने पढ़ाई छोड़ी थी, वहां के अधिकारी उन्हें पुनः लेने को तैयार न थे। पढ़ाई न करने पर उन विद्यार्थियों का भविष्य अंधकारमय हो गया था।

इस कठिनाई को लक्ष्य करते ही लाला लाजपतराय ने लाहौर में नेशनल स्कूल की स्थापना की। पहला उद्देश्य तो यह था कि जिन विद्यार्थियों ने अपनी पढ़ाई छोड़कर असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था उनका जीवन नष्ट न हो, वे पढ़ सकें। दूसरा उद्देश्य यह था कि नेशनल कालेज के माध्यम से स्वतंत्रता-संग्राम के लिये कर्मठ सेनानी तैयार किये जायें।

भगतसिंह की किशोरावस्था थी। उन्होंने बड़े उत्साह से आन्दोलन में भाग लिया था। आंदोलन स्थगित होने के बाद उनकी इच्छा पढ़ाई की ओर न लग रही थी। वह चाहते थे, फिर जुलूस निकाले जायें, नारे लगें, अंग्रेज सरकार की हाय-हाय हो, लेकिन ऐसा कुछ न हो सका। वह बहुत निराश हुये।

उस समय गुरुद्वारा आंदोलन सांप्रदायिक क्षेत्र में ही सीमित था और उसका उद्देश्य गुरुद्वारों से अनाचार दूर करना था, परन्तु इसकी भावना उग्र सुधारवादी और अपने सीमित क्षेत्र में क्रांतिकारी थी। यह गुरुद्वारे कुछ महन्तों की पैतृक और वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप में चल रहे थे। गुरुद्वारों में भेट के रूप में आने वाली लाखों की सम्पत्ति और गुरुद्वारों से जुड़ी हुई जागीरों की आय इन महन्तों की व्यक्तिगत या पारिवारिक आमदनी समझी जाती थी। इन महन्तों के स्वामित्व में यह गुरुद्वारे तमाशबीनी और व्यभिचार के अड्डे बन चुके थे। गुरुद्वारा आंदोलन का उद्देश्य इन मंदिरों को महन्तों की पैतृक और व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहने देकर सम्प्रदाय की सामाजिक सम्पत्ति बना देना और इन गुरुद्वारों तथा इनकी आमदनी-खर्च का प्रबंध निर्वाचित पंचायतों द्वारा करना था।

सरकार मंदिरों की सम्पत्ति के समाजीकरण के विरुद्ध सम्पत्ति पर महन्तों के पैतृक स्वामित्व व अधिकार की रक्षा करने के पक्ष में थी। सुधार चाहने वाली सिक्ख जनता ने यह आंदोलन सत्याग्रह के रूप में

चलाया। सिक्खों के निःशस्त्र जत्थे गुरुओं की वाणी का पाठ करते हुए इन मंदिरों और मठों पर सामाजिक अधिकार कायम करने के लिए जाते थे। महन्तों के पालतू गुण्डे और पुलिस की बड़ी-बड़ी गारदें इन निःशस्त्र स्वयंसेवकों पर लाठियों की अंधाधुंध बौछार करते थे। कई जगह गोली चली। प्रायः मंदिरों की जमीन खून से रंग जाती थी। मूर्छित होकर गिर पड़े स्वयंसेवक जेलों में बन्द कर दिये जाते थे। गुरुद्वारा आंदोलन संघर्ष का अनुमान 'ननकाना साहब' के उदाहरण से ही किया जा सकता है। इस मंदिर पर अधिकार करने के लिए लगभग दो सौ स्वयंसेवकों की जानें गईं। सिक्खों के इस गुरुद्वारा सुधार आंदोलन के सामने सरकार को परास्त हो जाना पड़ा, क्योंकि सिक्खों के सौभाग्य से इस आंदोलन को स्थगित कर देने वाला कोई व्यक्ति न था।

—यशपाल, सिंहावलोकन, भाग 1, पृष्ठ 36

भगतसिंह की रगों में जवानी का जोश था, खून में उबाल था। गांधीजी का आंदोलन स्थगित हो चुका था, लेकिन भगतसिंह का उत्साह ठण्डा नहीं हो रहा था। वह निष्क्रिय नहीं बैठना चाहते थे। वह बेहद उतावले हो रहे थे, फलस्वरूप वह गुरुद्वारा आंदोलन में कूद पड़े। उन्होंने पूरे उत्साह से इसमें भाग लेना शुरू किया। गुरुद्वारा आंदोलन के पहले न तो भगतसिंह सर पर केश रखते थे और न पगड़ी ही बांधते थे, क्योंकि भगतसिंह के दादा सरदार अर्जुनसिंह सिक्ख होते हुए भी बहुत कुछ आर्य-समाजी थे। वह बाकायदा हवन और पाठ करते थे। इस संबंध में यशपालजी ने 'सिंहावलोकन' में एक मजेदार घटना का वर्णन किया है, जिससे सरदार अर्जुनसिंह की आर्य-धर्म के प्रति आस्था प्रकट होती है। उस घटना का यहां वर्णन करना असंगत न होगा—

सन् 1925 के जाड़ों की बात है। सरदार किशनसिंह जी एक इंश्योरेंस कम्पनी की एजेंसी कर रहे थे। उनका दफ्तर लाहौर में लुहारी दरवाजे के भीतर बाजार में दुमंजिले पर था। जब यह मकान मौजूद था तो भगतसिंह के साथियों को दूसरा मकान किराये पर लेने की जरूरत क्या थी? उस समय जोरू-जाता किसी के था ही नहीं। सरदार किशनसिंह एजेंसी तो जरूर लिये थे, परन्तु उन दिनों उनकी रुचि खेती और

दूध विक्रय की ओर ही अधिक थी। वे प्राय: सांडा गांव में ही रहते। एजेंसी का दफ्तर हम लोगों के लिए आराम का डेरा बना हुआ था। मैं उन दिनों लाहौर में नेशनल स्कूल में पढ़ रहा था। नेशनल कालेज समाप्त होकर केवल नेशनल हाई स्कूल ही रह गया था। भगतसिंह अनिच्छा से थोड़ा-बहुत समय घर के कारोबार में लगाता, शेष समय पढ़ता और संगठन के लिये भूमि तैयार करने में लगा रहता। सुखदेव कभी लायलपुर अपने घर चला जाता, वहां उनके परिवार ने आटे की एक चक्की लगवा दी थी। लाहौर आता तो भगतसिंह के साथ ही बना रहता। हमारे सहपाठी झण्डासिंह और जयदेव गुप्ता भी वहीं थे। झंडासिंह 'गांधी खद्दर भण्डार' में काम कर रहा था और उसी में जुटा रहा। जयदेव गुप्ता सरदारजी के बीमे के काम में सहयोग दे रहा था। खाना हम लोग किसी तन्दूर पर खा लेते और दफ्तर में बिछी दरी पर बिस्तर लगाकर रात काट देते। दफ्तर में मेज-कुर्सी मौजूद होने से पढ़ने-लिखने की भी सुविधा थी।

एक दिन स्कूल में छुट्टी थी। दूसरे लोग मकान पर मौजूद नहीं थे। मैं अपनी सनक में मेज पर बैठा कोई लेख या कहानी लिख रहा था। मेज के नीचे टीन की क्या चीज पड़ी है, उसका ख्याल न कर उस पर जते जमाकर रख लिये थे। संभव है, अचेतन रूप से यही धारणा रही हो कि रद्दी की टोकरी है। लिखते समय विचारों को ठेलने के लिये मेज के नीचे उस टीन की चीज को जूते से एड़ दिये जा रहा था।

जीने पर भारी कदमों से धम्-धम् करते हुए एक वृद्ध सिक्ख सज्जन अपने ग्रामीण वेश में ऊपर दफ्तर में आये। मैंने एक दफा नजर उठाकर उनकी ओर देखा और लिखने में तन्मय रहा। सरदारजी के ऐसे अनेक सम्बन्धी गांवों से आते-जाते रहते थे। इस सज्जन की दाढ़ी खूब प्रशस्त, बर्फ की तरह श्वेत और चेहरा खूब तेजोमय गुलाबी रंग का था। मैंने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। आगन्तुक भी मुझसे आदर की प्रतीक्षा कर एक कुर्सी खींच चुपचाप दीवार के पास बैठ गये। मैं मालिक बना बैठा लिखता रहा और मेज के नीचे टीन की चीज पर जूते की ठोकरें भी जमाता रहा।

अचानक वजनी गालियों से भरी एक करारी डांट सुन आंख उठाकर देखा कि वयोवृद्ध भव्य मूर्ति की आंखें लाल और चेहरा क्रोध से तमतमा उठा है और वे हाथ में थमी मोटी लाठी को फर्श पर ठोंक रहे है।

"गधा, उल्लू, नास्तिक, बदमाश सिर तोड़ दूंगा···।" उनके हाथ की लाठी मेरे सिर पर पड़ना ही चाहती थी। वृद्ध ने अपने आवेश को कठिनता से वश में कर मेज के नीचे संकेत करते हुए फटकारा—"उल्लू, यही तेरी तमीज है ?"

मेज के नीचे झांककर देखा तो अपने जूते के बीच पाया एक हवन-कुण्ड। सब कुछ समझ में आ गया। उपेक्षा के कारण पहचानने मे भूल हुई थी। भगतसिंह से सुन रखा था कि दादाजी नित्य हवन करते हैं। जहां जाते हैं पोटली में हवन-कुंड और हवन-सामग्री साथ बांध ले जाते हैं।

सिंहावलोकन, पृष्ठ 23-24

इस घटना से स्पष्ट है कि सरदार अर्जुनसिंह सिक्ख धर्म के अनुयायी होते हुए भी आर्यसमाज के कट्टर पक्षपाती थे। इसलिये भगतसिंह शुरू से ही न तो केश रखते थे और न कृपाण इत्यादि रखते थे। लेकिन जब सिक्ख सम्प्रदाय का आंदोलन छिड़ा तो तमाम युवकों ने उसमें हिस्सा लेना शुरू किया। भला भगतसिंह उसमें कैसे पीछे रह सकते थे। गांधीजी का असहयोग आंदोलन ठण्डा हो चुका था, लेकिन भगतसिंह का जोश ठण्डा नहीं हुआ था, फलस्वरूप उन्होंने गुरुद्वारा आंदोलन में खूब जमकर हिस्सा लिया।

गुरुद्वारा आंदोलन में भाग लेने वाले सभी सिक्ख थे। इस आंदोलन में भाग लेने वाले सिक्खों के प्रति श्रद्धा के कारण भगतसिंह ने भी सिर पर केश रख लिये। वह अकाली हो गये। अकाली के प्रतीक चिह्न के रूप में वह पगड़ी बांधने लगे और कृपाण भी रखने लगे। इन दिनों पंजाब के अनेक युवकों ने गुरुद्वारा आंदोलन में भाग लिया और अकाली बनकर केश रख लिये। पगड़ी बांधना और कृपाण रखना फैशन बन गया था। भगतसिंह को कृपाण रखना बहुत पसन्द था। यह इसलिये कि कृपाण के आधार पर सरकार द्वारा लगाये हुए प्रतिबन्ध का विरोध करने के लिए सिक्खों ने कृपाण आंदोलन चलाया था और सरदार लोग तीन फिट,

चार फिट लम्बी तलवारें हाथ में लिये कानून भंग करते थे।

जब भगतसिंह नेशनल कालेज में भरती हुए तो नियम से काली पगड़ी बांधते थे। तब तक गुरुद्वारा आंदोलन समाप्त हो चुका था। उस समय तक काली पगड़ी साम्प्रदायिकता का चिह्न बन गई थी। भगतसिंह को धीरे-धीरे अरुचि होने लगी और उनका काली पगड़ी बांधने का नियम शिथिल पड़ता गया। गुरुद्वारा आंदोलन में सिक्खों को सफलता मिल जाने के बाद उनमें सा प्रदायिक संकीर्णता का अहंकार और रूढ़िवाद जोर पकड़ने लगा था, युवकों को इससे अरुचि होने लगी, क्योंकि उन्होंने रूढ़िवाद और साम्प्रदायिकता के लिये गुरुद्वारा आंदोलन में भाग नहीं लिया था। उन्होंने तो सीधे-सादे मठाधीशी और महन्तगिरी के खिलाफ मोर्चा लिया था। जब उसमें बुराई आ गई तो युवकों को उससे विरक्ति हो गई। ऐसे में भगतसिंह भला झूठी परम्परा को कैसे निभा सकते थे। उन्होंने गुरुद्वारा जाना बिलकुल बंद कर दिया।

नेशनल कालेज में पढ़ते समय ही भगतसिंह में क्रांति की भावना जागी, जो इतनी प्रबलतम होती गई, जिसने उन्हें देश के इतिहास में अमर कर दिया। युवकों के लिये वह प्रेरणा बन गये। नेशनल कालेज में उनके कुछ सहपाठी आगे चलकर क्रांतिकारी जीवन में भी साथ रहे। उनमें प्रमुख नाम हैं भगवतीचरण, यशपाल और सुखदेव।

इनमें यशपाल और सुखदेव, भगतसिंह के सहपाठी थे। भगवतीचरण दो कक्षा आगे थे।

यशपाल में आरम्भ से ही लिखने की प्रवृत्ति थी। आज वह भारत के जाने-माने लेखक हैं। उस समय नेशनल कालेज में पढ़ते समय उनके साथी, विशेषकर सुखदेव और भगतसिंह उन्हें साहित्यक कहकर चिढ़ाया करते थे। बहुत कम लोग जानते थे कि भगतसिंह की भी लिखने की ओर प्रवृत्ति है। भगतसिंह ने एक-दो बार कुछ चीजें लिखकर यशपाल को दिखाईं और उनसे परामर्श भी लिया, परन्तु उसे प्रकाशित होने के लिये नहीं भेजा। वह उर्दू और हिन्दी दोनों में लिखते थे।

भगतसिंह के दूसरे साथी थे सुखदेव, जो महान् क्रांतिकारी हुए। सुखदेव लायलपुर के रहने वाले थे। उन्हें पढ़ने का विशेष चाव नहीं

था। पढ़ लिया तो पढ़ लिया, नहीं पढ़ा तो कोई परेशानी नहीं। उनके घर लायलपुर में आढ़त का काम होता था। उनके बचपन में ही उनके पिता का देहान्त हो चुका था। उनके ताऊ लाला अचिन्तरामजी थे, जो कांग्रेस के स्थानीय नेताओं में से थे। वे 1920 ई० के असहयोग आंदोलन में भी जेल गये थे। अचिन्तराम की उस समय की एक फोटो, जिसमें वह कैदी की वर्दी और हथकड़ी पहने हुए थे, सुखदेव की मेज पर रखी रहती थी।

सुखदेव को पढ़ने का व्यसन नहीं था, लेकिन चुपचाप सोचते रहना उनकी आदत बन चुकी थी। उनके स्वभाव में 'झोंक' की प्रवृत्ति बहुत ज्यादा थी, जब जिस बात की झोंक आ जाए उसे जरूर कर गुजरते थे। कुछ दिन स्वास्थ्य सुधारने और शरीर बनाने की झोंक आ गई तो पढ़ने-लिखने का ख्याल छोड़ दिया और नित्य मालिश और कसरत करने लगे। एक कुर्ता भी पहलवानी ढंग का सिला लिया और कमर में लुंगी भी पहलवानी ढंग की बांधनी शुरू कर दी। शरीर मामूली, इकहरा होने पर भी बांहों को इस तरह अकड़ा कर चलते मानो पुट्ठों के बहुत उभरे रहने के कारण पसलियों से दूर-दूर रहती हों। शारीरिक कमजोरी से उन्हें विशेष घृणा थी। कभी-कभी अपनी ही कमजोरी का उपहास उड़ाने के लिए अपने साथियों को कहानी सुनाने लगते—"हमारे पिता, चाचा और ताऊ सब मिला कर नौ भाई-बहन थे, उनमें से एक को पालने में सोए-सोए चूहे खा गये।" इतना सुना कर कहकहा लगाते और अपने पुट्ठों को सहलाते हुए कहते—"जिसे चूहे खा जायें, वह चूहों से बढ़कर क्या होगा।" और अन्त में इस परिणाम पर पहुंचते कि—"हम चूहों की औलाद हैं तो चूहों से बढ़कर क्या होंगे।" जिन दिनों कसरत और पहलवानी का शौक चढ़ा, उन्होंने सिर पर उस्तरा फिरवा लिया, कुछ दिन बाद फिर शौक पलटा तो फिर लट्ठे का सफेद पाजामा, रंगीन कमीज पहननी शुरू कर दी, सिर पर घुंघराले बालों में कंघी भी होने लगी और खूब पालिश किया ग्लेसकिड का जूता पांवों में रहने लगा।

सुखदेव का स्वभाव कुछ इस तरह का था कि वह दूसरों से कुछ सीखने में कम ही विश्वास करते थे। यह बात उनके जीवन की एक

मामूली घटना से काफी स्पष्ट हो जाती है। पहलवानी के झोंके के दिनों में सुखदेव ने किसी किताब में पढ़ा था कि झगड़े या मारपीट के समय अपने से बहुत अधिक बलवान व्यक्ति से मुकाबला पड़ जाने पर आत्म-रक्षा और प्रतिद्वंद्वी को परास्त कर देने का उपाय उसकी नाक पर जोर से घूंसा मार देना है। ऐसे आघात से कोई भी व्यक्ति सुध-बुध खोकर बेकाम हो जाएगा। साधारणतः इस उपाय को पढ़कर विश्वास कर लेना चाहिए था, परन्तु सुखदेव ने इसे परखना भी आवश्यक समझा।

उन दिनों गांधीजी ने प्रत्येक मास की जो तारीख उपवास के लिये निश्चित की थी, सुखदेव यह उपवास रखते थे। उस दिन उपवास किये हुए बस अकेले ही किसी काम से सड़क पर चले जा रहे थे, अचानक 'जुजुत्सु' की किताब में पढ़ी हुई बात उन्हें याद आ गई। वह किसी कद्दावर, बलवान दिखाई देने वाले व्यक्ति को खोजने लगे। ऐसा एक आदमी उन्हें दिखाई पड़ गया। उसके समीप पहुंच उसकी बेखबरी में सुखदेव ने उसकी नाक पर घूंसा जमा दिया और चोट का प्रभाव देखने के लिए समीप ही खड़े हो गये।

चोट खाने वाला आदमी सचमुच अपने चेहरे को दोनों हाथों से संभालकर सड़क पर बैठ गया और काफी देर तक बैठा रहा। इस बीच सुखदेव फर्लांग-दो फर्लांग दौड़कर जा सकने थे, परन्तु वह तो अपने परीक्षण का प्रभाव देखने पर तुले थे, समीप ही खड़े रहे। कुछ देर बाद उस व्यक्ति ने होश संभाला और अपने ऊपर अकारण आघात करने वाले व्यक्ति को अपनी अवस्था पर गौर करते पाया। ऐसी अवस्था में चोट खाने वाले व्यक्ति ने वही किया, जिसकी किसी भी सामान्य व्यक्ति से आशा की जानी चाहिए। उसे अपनी ओर लपके देख सुखदेव बचने के लिए भागे। एक सुखदेव उपवास के कारण सुबह से भूखे और कमजोर थे, जिस पर उनके इस परीक्षण का पात्र उनसे अढ़ाई गुना बलवान। सुखदेव काबू आ गये और उन पर मार पड़ने लगी। वह असहाय मार खाने बैठ गये। आते-जाते आदमियों ने बीच-बचाव कर उन्हें छुड़ाया। पूछा गया, आखिर तुमने पहले क्यों मारा? सुखदेव का उत्तर था—"मैंने मारा था, अब तुम मार लो।" अस्तु, इस परीक्षा से सुखदेव को

नाक पर घूंसा लगने के फल का उचित अन्दाज हो गया।

तीन

वक्त बीतता रहा पढ़ाई चलती रही, लेकिन भगतसिंह की और सुखदेव की तबीयत पढ़ाई में बिल्कुल नहीं लगती थी। वे लोग कुछ करना चाहते थे, इस तरह निष्क्रिय बैठना उन्हें बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था, लेकिन कोई रास्ता नहीं निकल रहा था।

एक दिन भगतसिंह यशपाल के साथ रावी नदी में नौका खेने का अभ्यास करने गये, सांझ का समय था, सूर्य डूब रहा था। डूबते सूर्य की लाली पश्चिमाकाश में फैली हुई थी। बड़ा सुहावना मौसम था। ये लोग एक नाव में बैठे हुए थे। इन दोनों के अतिरिक्त और कोई न था। एकदम खामोशी छाई हुई थी। दोनों ही अपने-अपने विचारों में डूबे हुए थे।

अचानक यशपाल ने कहा, "LET US PLEDGE OURLIVES TO COUNTRY." (हम लोग अपना जीवन देश के लिए अर्पित करने की प्रतिज्ञा कर लें।)

भगतसिंह ने चौंककर यशपाल की ओर देखा जैसे जानना चाहते हों कि यह बात केवल बहलाने के लिये तो नहीं कही गई है। लेकिन यशपाल के चेहरे पर पूरी तरह से गंभीरता थी और मुख दृढ़ता के निश्चय से चमक रहा था। भगतसिंह भी सहसा बहुत गंभीर हो गये। अपना हाथ यशपाल की ओर बढ़ा दिया—"I DO PLEDGE." (मैं भी प्रतिज्ञा करता हूं।)

हाथ मिलाने के बाद दोनों ही चप्पू चलाना छोड़कर चुपचाप बैठे रहे, उस समय सूर्यास्त हुआ ही था, आकाश पर लाली थी।

बड़ी देर तक नाव यों ही लहरों के बहाव पर बहती रही। जब अंधेरा होने लगा तो नाव किनारे लाकर मांझी को सौंप दी गई। लौटते समय दोनों लोग खामोशी से चलते रहे, जैसे सिर पर बहुत बड़ा बोझ आ गया हो।

कालेज की पढ़ाई चलती रही, लेकिन भगतसिंह और सुखदेव की प्रवृत्ति दूसरी ओर मुड़ गई थी। वे लोग अक्सर कालेज से गायब रहते और किसी नई दिशा की खोज करते रहते।

बात सन् 23-24 की है। लोगों में देश-सेवा के लिए और स्वाधीनता प्राप्ति के लिये रुचि तो थी, लेकिन अब जैसे उतना उत्साह न रह गया था। गांधीजी ने असहयोग आंदोलन स्थगित करके जैसे सारे उत्साह पर बर्फ डाल दी थी। लोगों की प्रवृत्ति मरती जा रही थी। साथियों ने राय की कि इस मरती हुई प्रवृत्ति को जगाना बहुत आवश्यक है, अगर लोग नहीं जागे तो यह देश हमेशा गुलाम रहेगा और अंग्रेज यहां हमेशा राज्य करते रहेंगे। निश्चय हुआ कि सोई हुई राष्ट्रीय भावना को जगाने का सबसे अच्छा साधन नाटक है। नाटकों का असर जनता के ऊपर सीधा और तेज पड़ेगा, इसलिये निश्चय हुआ कि नाटक खेले जायें।

किसी लेखक का "महाभारत" नाटक था। उसके वार्तालापों में जगह-जगह परिवर्तन करके इन लोगों ने अपने लिए उपयोगी बना लिया। इसका नाम रखा "कृष्ण विजय"। व्यंजना से अंग्रेजों को कौरव और कांग्रेसियों को पांडव बना लिया। इसमें कुछ गाने विशेषकर प्रहसन भाग मे सम्मिलित कर लिये। इनमें से एक गाना था—"कदे तू बी सिन्दिया होश संभाल ओं (ऐ हिन्दी कभी तू भी होश संभाल। तेरा घरबार विदेशी लूट ले गया और तू बेखबर सो रहा है। ओ लूटने वाले, हमारे साथ ज्यादतियां न कर। हम तेरी चालें समझ चुके हैं···)" इत्यादि।

यह गाना सरदार अजीतसिंह के एक पुराने संगीत "पगड़ी संभाल ओ जट्टा (अरे किसान, तेरे सिर की पगड़ी उतरी जा रही है) के भाव को लेकर बनाया था। सरदार अजीतसिंह के उस गीत को सरकार ने गैरकानूनी घोषित कर दिया था। इन नाटकों के ऐसे सरकारद्रोही भागों को गैरकानूनी करार दे दिया गया, कुछ दिन इन लोगों में नाटक खेलने का खूब शौक रहा। भगतसिंह ने भी इन नाटकों मे खूब जमकर हिस्सा लिया।

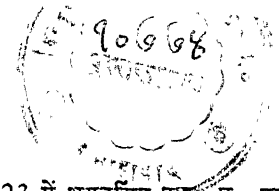

चार

1923 में भगतसिंह एफ० ए० पास कर बी० ए० के प्रथम वर्ष में प्रविष्ट हुए। अब तक उन्होंने क्रांतिकारी दल की सदस्यता प्राप्त कर ली थी और उसके सक्रिय सदस्य थे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल के वह विशेष कृपापात्र थे। भगतसिंह के बारे में उन्होंने अपनी पुस्तक 'बंदी जीवन' (पृष्ठ 300) में लिखा है—"मुझे पता लग गया था कि सरदार गुरुमुखसिंह इत्यादि, जो अपना अलग संगठन कर रहे थे, यह नहीं चाहते थे कि अब की बार सिक्ख लोग गैर-सिक्ख संस्थाओं के साथ मिलकर भारतीय विप्लववादी आंदोलन में भाग लें। यहां तक सरदार गुरुमुखसिंह ने चाहा कि हमारे सच्चे साथी सरदार भगतसिंह को हम लोगों से तोड़कर अपनी संस्था में मिला लें। इस कारण सरदार गुरुमुखसिंह ने भगतसिंह को बहुत समझाया कि तुम बंगालियों के फेर में मत पड़ो, इनके फेर में पड़ोगे तो फांसी पर लटक जाओगे, काम कुछ भी नहीं कर पाओगे। इस प्रकार से गुरुमुखसिंह जी, भगतसिंह जी से जितनी बातें कहते थे, वे हम लोगों से सब कह देते थे। बहुत बहकाने पर भी श्री भगतसिंह जी ने हम लोगों का साथ नहीं छोड़ा।"

लेकिन तभी उसी वर्ष भगतसिंह के जीवन में एक घटना घटी, जिसने उनकी जीवन-दिशा बदल दी। उनका विद्यार्थी-जीवन समाप्त हो गया और परिस्थितियों ने उन्हें उठाकर जीवन की लम्बी राह पर ला खड़ा किया।

भगतसिंह अपनी दादी जयकौर के बड़े लाड़ले थे। उनके बड़े भाई जगतसिंह की असामयिक मृत्यु से यह लाड़ गहरे मोह में बदल गया। उन्होंने अपने पुत्र सरदार किशनसिंह से आग्रह किया कि अब भगतसिंह का विवाह कर दिया जाए। वह स्वभाव से डिक्टेटर थीं। जो कह दिया, उसे पूरा होना ही चाहिए। सरदार किशनसिंह ने पड़ोस के एक गांव के एक अमीर सिक्ख परिवार में भगतसिंह की शादी तय कर दी। लड़की वाले लड़के को देखने आये। भगतसिंह उस दिन खूब प्रसन्न रहे, वे सारे दिन खेलते-उछलते रहे। आगंतुकों के साथ उन्होंने अत्यन्त शिष्ट व्यवहार

किया। वे उन्हें लाहौर तक विदा करने भी गये।

लौटने पर उन्होंने अपने पिता सरदार किशनसिंह से स्पष्ट कह दिया कि वह शादी नहीं करेंगे। सरदार जी ने आपत्ति का कारण पूछा। भगतसिंह ने उत्तर दिया—"जब तक आर्थिक रूप से मैं अपने पैरों पर न खड़ा हो जाऊं, शादी करना ठीक नहीं।"

सरदार किशनसिंह बिगड़ उठे—"तू हमें ही रास्ता दिखाता है! विवाह कर लो और अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश करो, हम मना करते हैं? विवाह हो जाने से तुझे कौन झंझट हो जाएगा?"

भगतसिंह ने दूसरा उपाय रखा। उन्होंने कहा—"अभी तो मेरी उम्र भी कम है।"

सरदार किशनसिंह और भड़के—"और सब बातों के लिए तो बुजुर्ग बनता है, बस शादी के लिए ही कमसिन है! ···शादी हो जाने दो। बहू को घर तब बुलाना, जब जरूरत जान पड़े।'

बहुत दबाव पड़ता देख भगतसिंह ने दूसरा एतराज किया। उन्होंने कहा—"शादी करेंगे तो पढ़ी-लिखी लड़की से।" उन्हें यह मालूम हो चुका था कि सरदार जी ने जो लड़की तलाश की है, वह गांव के बड़े अच्छे जमींदार की लड़की है। गांव में लड़कियों का स्कूल कहां? बहुत होगा तो गुरुमुखी जानती होगी। भगतसिंह ने जिद की कि वह कम-से-कम मैट्रिक लड़की से शादी करेंगे। इस उत्तर से सरदार किशनसिंह और बौखला उठे।

लेकिन शादी का निर्णय अटल था। सगाई का दिन निश्चित हो गया। भला भगतसिंह शादी कैसे करते? उन्होंने तो अपनी शादी पहले ही 'क्रांति' से कर ली थी। वह सगाई से कुछ दिन पहले लाहौर गये और वहां से जाने कहां फरार हो गये। सरदार किशनसिंह को अपनी मेज की दराज में रखा एक पत्र मिला—

पूज्य पिताजी, नमस्ते!

मेरी जिन्दगी मकसदे आला यानि आजादी-ए-हिन्द के अमूल के लिए वक्फ हो चुकी है। इसलिए मेरी जिंदगी में दुनियावी खाहशात वायसे कशिश नहीं है।

आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था तो बापूजी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि खिदमते-वतन के लिए वक्फ कर दिया गया है, लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूं।

उम्मीद है कि आप मुझे माफ फरमायेंगे।

आपका तावेदार

भगतसिंह

इसी फरारी के साथ ही नेशनल कालेज का अध्याय समाप्त हो गया। घर से बाहर पैर रखने का अर्थ था, क्रांति के विशाल धधकते कुंड में कूद पड़ना। भगतसिंह अपने पिता के नाम जो पत्र छोड़ गये थे, उसमें साफ लिखा था कि वे देश-सेवा के लिए समर्पित है और उसी काम में आगे बढ़ रहे हैं। वे लाहौर से चलकर सीधे कानपुर जा पहुंचे। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने लिखा है—"मेरे कहने पर भगतसिंह घर छोड़ कर कानपुर चले गए थे। पहले-पहल कानपुर मे मुन्नीलाल जी अवस्थी के मकान पर उनके रहने का इन्तजाम किया गया था।

कानपुर क्षेत्र का काम उन दिनों योगेशचन्द्र चटर्जी देख रहे थे। भगतसिंह ने उनके साथ काम करना आरम्भ किया। श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य (बाद में प्रताप के सम्पादक) श्री बटुकेश्वर दत्त, श्री अजय घोष (बाद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेट्री) और श्री विजय कुमार सिन्हा जैसे क्रांतिकारियों से उनका परिचय वहीं हुआ। ये सब बंगाली थे और इनके बीच एक सिक्ख युवक का रहना सी० आई० डी० के संदेह को निमंत्रण देना था। इस पर विचार हुआ और श्री गणेशशंकर 'विद्यार्थी' ने अपने 'प्रताप' के सम्पादन विभाग में भगतसिंह को स्थान देकर इस समस्या को हल कर दिया। उनका नाम भी बदल कर बलवन्तसिंह कर दिया गया। इसी नाम से वह 'प्रताप' में लिखने लगे। इस व्यवस्था के होने के पहले कुछ दिनों तक अखबार बेच कर उन्होंने अपना काम चलाया था।

अब भगतसिंह पूरी तरह क्रांतिकारी दल के आदमी थे और दल का काम ही उनका काम था। लेकिन एक काम से उनका मन हमेशा हटता था। दल के सामने भयंकर आर्थिक समस्या थी। इसको सुलझाने के लिए

उनके सामने एक ही रास्ता था डकैती डालने का। भगतसिंह नहीं चाहते थे कि डकैती डाली जाए, लेकिन पार्टी को रुपये की जरूरत थी और रुपया पाने का कोई रास्ता नहीं था। यह डकैती का एक पहलू था, पर डकैती तो किसी नागरिक के घर ही डालनी थी, इसलिए डकैती पार्टी को जनता से दूर करती थी। जनता में उनके प्रति विद्वेष की भावना पनपती थी, यह दूसरा पहलू था। भगतसिंह ने संसार की क्रांतियों के इतिहास का गहरा अध्ययन किया था और उन्हें विश्वास हो गया था कि चौंका देने वाले कुछ कांडों से देश में क्रांति नहीं हो सकती। उसके लिए जनता को साथ लेना होगा, पर डकैती से दूरी ही बढ़ती है। उन्होंने निश्चत कर लिया था कि वह इस स्थिति को बदलेंगे और अपने जीवन को इसका साधन बनायेंगे।

कानपुर पुलिस की निगाहों में चढ़ गया था। एक बड़े कांड की तैयारी आरम्भ हो गई थी, इसलिए पार्टी के सदस्य बेहद सतर्कता बरत रहे थे और इधर-उधर हो गये थे। भगतसिंह को श्री गणेशशंकर 'विद्यार्थी' ने ग्राम शादीपुर, तहसील खैर, जिला अलीगढ़ के नेशनल स्कूल में हैड-मास्टर बनवा दिया था। वे ठाकुर टोडरसिंह (बाद में कांग्रेसी एम० एल० ए०) के घर रहते थे और स्कूल का काम देखते थे। स्कूल थोड़े ही समय में चमक उठा।

वे आगे बढ़ते जा रहे थे, लेकिन घर के लोग उनके लिए बेहद परेशान थे—कहां गया भगतसिंह? उन्हीं दिनों भगतसिंह ने अपने मित्र रामचन्द्र को एक पत्र लिखा। उसमें अपना पता भी दिया। हिदायत थी कि वह किसी को उनका पता न बतायें, लेकिन परिवार की परेशानी रामचन्द्र के सामने थी। उन्होंने श्री जयदेव गुप्ता से पत्र का जिक्र किया, पर पता नहीं बताया। बहुत आग्रह करने पर रामचन्द्र ने कहा—"पता बताने की तो कसम है, उसे मैं तोड़ नहीं सकता, पर तुम्हारे साथ उस पते पर चल सकता हूं।"

भगतसिंह की दादी श्रीमती जयकौर सख्त बीमार थी और भगतसिंह को एक बार देखने के लिए तड़प रही थी। उन्हें हमेशा यही लगता था कि उन्हीं की जिद के कारण उनके प्यारे भगतसिंह ने घर छोड़ा

पड़ा था। सरदार किशनसिंह ने 'बन्दे मातरम्' में विज्ञापन छपवाया था—भगतसिंह जहां भी हों, लौट आयें, उनकी दादी सख्त बिमार हैं। भाग्य की बात, यह विज्ञापन श्री गणेशशंकर 'विद्यार्थी' ने पढ़ा था, पर उन्हें तब क्या पता था कि उनका लाड़ला बलवन्तसिंह ही भगतसिंह है और विख्यात क्रांतिकारी सरदार किशनसिंह और सरदार अजीतसिंह का वंश-पुष्प है।

श्री जयदेव गुप्ता और श्री रामचन्द्र जब 'विद्यार्थी जी' के पास पहुंचे तब यह भेद खुला। पत्र में पता सम्भवतः 'विद्यार्थी जी' का था। वहां से ये लोग शादीपुर गये। भगतसिंह ने उन्हें दूर से देख लिया और विद्यार्थी के मेहमान की खातिर करने और अपने बारे में कुछ न बताने की बात कह इधर-उधर हो गये। ये लोग फिर 'विद्यार्थी जी' के पास आये और उनका आश्वासन पा घर लौटे। सब समाचार सुन सरदार किशनसिंह ने कानपुर के कांग्रेसी नेता मौलाना हसरत मोहानी (बाद में लीग के नेता) को पत्र लिखा कि वे 'विद्यार्थी जी' के द्वारा भगतसिंह से मिलें और उन्हें घर लौटने को कहें। भगतसिंह के नाम भी एक पत्र उसी लिफाफे में भेजा। पत्र में विवाह के लिए आग्रह न करने का वचन था और दादी जी के बीमार होने की बात कही गई थी। 'विद्यार्थी जी' और मौलाना साहब ने जोर डाला और दादी की बीमारी से विचलित होकर वह लौट पड़े। लगभग छः महीने बाद वह घर लौटे थे। घर का उदास वातावरण उनके आने से खिल उठा और किसी ने भी उनसे विवाह की बात न की। वे पूरी तल्लीनता से दादी की सेवा में जुट गये। अच्छी से अच्छी नर्स जो सेवा नहीं कर सकती थी, वह उन्होंने की, दवा और खुराक का ध्यान रखा ही, साथ ही उन्हें हंसाया भी। वे कुछ दिन में स्वस्थ हो गई। अब यह स्थिति हो गई कि भगतसिंह कभी दादी के पास बेंगा में रहते तो कभी लाहौर चले जाते, कभी दूसरे दिन ही लौट आते, कभी कई-कई दिन न लौटते। उत्तर भारत में क्रांति-संगठन में जो नया ताना-बाना बुना जा रहा था, उसी में वह लगे हुए थे।

उन दिनों अकाली आंदोलन बड़ी तेजी से चल रहा था। सरकार-परस्त व्यक्तियों के हाथों में गुरुद्वारों की आय सार्वजनिक हित में व्यय

करने के लिए यह आंदोलन था। ननकाना साहब में गोली-काण्ड हुआ, राक्षसी लाठी-चार्ज हुआ था। उस गोली-काण्ड में अनेक व्यक्ति शहीद हुए। उन शहीदों का शोक-दिवस मनाने के लिए एक शोक-दिवस सभा की जा रही थी। उसमें सभी को अपनी भुजाओं पर काली पट्टी बांधकर आना था। नाभा के राजा रिपुदमनसिंह के स्वतन्त्र विचारों से सभी लोग परिचित थे, किन्तु वे इतनी भारी जोखिम ले सकेंगे, इसका कोई विश्वास न था। बस, फिर क्या था ? वायसराय उनसे बहुत नाराज हुए। उन्हें न केवल गद्दी से उतार दिया गया, वरन् देहरादून में नजर-बन्द कर दिया गया। उनका अपराध मात्र इतना था कि उन्होंने शहीदों से सहानुभूति दिखाई थी।

अंग्रेजी राज्य का अन्याय कैसे सहन किया जा सकता था ? अकालियों के आंदोलन का रुख ननकाना साहब से जैतों (नाभा) की ओर हो गया। अकालियों के जत्थे जैतों जाने लगे। यह जत्थे गांव-गांव होकर आते थे, उनका स्वागत स्थान-स्थान पर होता था। इसी प्रकार एक अकाली जत्था भगतसिंह के गांव बेंगा से होकर गुजरने वाला था। गांव में जत्थे का स्वागत न हो, इससे गांव की प्रतिष्ठा को धक्का लगता था, किन्तु अड़चन बड़ी भारी थी।

सरकार और सरकारपरस्त लोग इन जत्थों को महत्वहीन सिद्ध करने में लगे थे। जत्थेदार सरदार करतारसिंह और सरदार ज्वालासिंह लाहौर पहुंचे और सरदार किशनसिंह ने जत्थे का स्वागत करने की व्यवस्था करने को कहा। सरदार किशनसिंह अवश्य ही गांव पहुंचते, किन्तु उन्हें बम्बई जाना था, फिर भी उन्होंने स्वागत व्यवस्था का भार अपने ऊपर ले लिया और इस काम के लिए भगतसिंह को गांव भेजा। स्वागत क्या था, यहां तो पूरा मोर्चा था। मोर्चा भी लगाना पड़ा, अपनों के ही विरुद्ध। सरदार किशनसिंह के ही कुटुम्ब में उनके भाई लगने वाले सरदार बहादुर दिलबागसिंह उन्हीं दिनों आनरेरी मजिस्ट्रेट बने थे। उन्होंने घोषणा की थी कि इस इलाके में जत्थे को खाना-पीना तो दूर रहा, सूखा पत्ता भी नहीं मिलेगा। वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि इन जत्थों का कोई महत्व नहीं है। इस कार्य के पीछे वह अपनी उन्नति का सपना देख रहे थे।

भगतसिंह ने परिस्थिति को देखा, समझा और सोचा। उसके प्रतिपक्षी थे सरदार बहादुर और उनके साथ सरकारी शक्ति। भगतसिंह के पास था केवल आत्मविश्वास। सरदार बहादुर आतंक की भाषा बोलते थे—जो कोई जत्थे का स्वागत करेगा, उसे उखाड़ फेंका जाएगा। भगतसिंह बोलते थे प्रेम की भाषा—जत्थे के स्वागत में ही गांव की प्रतिष्ठा है। दोनों ओर तैयारी जारी थीं। ग्रामवासी हृदय से भगतसिंह के साथ थे, किन्तु भय···!

अन्त में निश्चित दिन आ गया। लोग आश्चर्य और उत्सुकता से इस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। सबने देखा कि जत्थे का स्वागत खूब धूमधाम से किया गया। भगतसिंह ने उनके ठहरने की ही व्यवस्था नहीं की, अपितु उनके स्वागत में सभा करके उसमें भाषण भी दिया। जब लोगों ने देखा, एक नवयुवक इस प्रकार निर्भीकता से बोल रहा है तो उनके भय का भी बांध टूट गया। भोजन और फल रातों-रात भगतसिंह के घर पहुंच जाते और प्रातः काल ही भगतसिंह और उनके नवयुवक साथी उन्हें सिर पर रख कर गांव के बाहर जत्थे के पास पहुंचा देते। जत्था आगे चला गया, गांव की प्रतिष्ठा रह गई, किन्तु सरदार बहादुर का स्वप्न टूट गया। उन्होंने जत्थे के जाने के बाद गांव वालों को गाते सुना—

'लाज रख ली, लाज रख ली, भगतसिंह प्यारे ने लाज रख ली।'

सरदार बहादुर की प्रतिष्ठा धूल में मिल चुकी थी। वे प्रतिशोध की अग्नि से धधक उठे। उन्होंने सरकार पर जोर डाला कि भगतसिंह को पकड़कर जेल में डाल दिया जाए। सरकार झिझक रही थी। भगतसिंह नाबालिग थे, किन्तु सरदार बहादुर अपनी हठ पर अड़े हुए थे। सरकार उनकी प्रतिष्ठा को बचाना चाहती थी। भगतसिंह के नाम वारन्ट निकाला गया, लेकिन वह पहले से ही सावधान थे। एकदम भाग खड़े हुए।

भगतसिंह लाहौर से सीधे दिल्ली पहुंचे। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'वीर अर्जुन' में पांव रखने के लिए जयचन्द्रजी की सिफारिश लेते गये थे। सिफारिश भी कैसी ? कोई आदमी लगभग मुफ्त काम करने को तैयार हो तो उसका स्वागत कौन नहीं करेगा ? कुछ दिन वह

दैनिक 'अर्जुन' में काम करते रहे। नाम वही पहले वाला था—बलवन्त-सिंह! अपनी निष्ठा और कठिन परिश्रम से उन्होंने पण्डित इन्द्र विद्या-वाचस्पति का विश्वास शीघ्र ही प्राप्त कर लिया।

इस सम्बन्ध में यशपालजी ने सिंहावलोकन में एक बहुत मजेदार घटना का वर्णन किया है—

'अर्जुन' में काम करते समय एक रोज अनुवाद करने के लिए उसे एक तार दिया गया। तार था 'चमनलाल एडीटर डिफंक्ट नेशन ऐराब्ड एट लाहौर।' भगतसिंह ने उसका अनुवाद किया, 'नेशन के सम्पादक चमनलाल लाहौर आ गये।' अनुवाद अर्जुन में छप भी गया।

इन्द्रजी ने अनुवाद की ओर भगतसिंह का ध्यान दिलाया, परन्तु भगतसिंह को इसमें कोई भूल दिखाई न दी। उनका ख्याल था कि चमनलाल 'डिफंक्ट नेशन' नामक पत्र के सम्पादक हैं। इन्द्र जी ने उसे 'डिक्शनरी' देखने का आदेश दिया और भगतसिंह को मालूम हुआ कि डिफंक्ट का अर्थ बन्द हो चुका हुआ पत्र है।

कुछ दिन बाद वह फिर कानपुर पहुंच गये। गंगा में बाढ़ आई हुई थी। ऐसे अवसरों पर स्वयंसेवकी करना उनका पैतृक गुण था। लोगों को बचाने और बसाने में जुट गये। कानपुर में ही भगतसिंह की मुला-कात प्रसिद्ध क्रांतिकारी चन्द्रशेखर "आजाद" से हुई थी। 'आजाद' उस समय कानपुर में थे और विद्यार्थी जी के अतिथि थे।

एक सुबह—

आजाद अन्दर से ज्योंही बाहर वाले कमरे में आये, उन्होंने विद्यार्थी जी के निकट एक अपरिचित किन्तु तेजस्वी नवयुवक को बैठे देखा। उसे देख कर आजाद क्षण-भर को ठिठक गये। वह नवयुवक लम्बे कद और छरहरे बदन का था। रंग गोरा था, आंखें छोटी-छोटी थीं। उसके चेहरे पर विलक्षणता का भाव था, उसने सिर के ढीले केशों पर लटकती-सी पगड़ी बांध रखी थी और उसके शरीर पर कोट और लुंगी थी। आजाद को उसने आकर्षित किया।

"आइये पंडित जी!" आजाद को संकोच में देख विद्यार्थी जी ने सपाक से कहा।

कार्यव्यस्त नवयुवक ने दृष्टि ऊपर उठाकर देखा। पंडितजी के रूप में उसे भव्य व्यक्तित्वधारी रोबीले नवयुवक के दर्शन हुए।

सिंहावलोकन, भाग 1, पृष्ठ [illegible]

"कैसा संयोग है कि दो ऐसे व्यक्ति जो एक-दूसरे के साक्षात्कार और सहयोग के लिए आतुर-लालायित रहे हैं, एक-दूसरे के समक्ष उपस्थित हैं।"

विद्यार्थी जी के इस कथन ने दोनों को प्रबल रूप से एक-दूसरे की ओर आकर्षित किया।

बलवन्त का अनुमान सत्य निकला।

"तुम पंडितजी से मिलने को आतुर थे न बलवन्त ! लो, तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई।"

"ओह ! क्रांति-देवता पंडित चन्द्रशेखर आजाद !" हर्षातिरेक से भगतसिंह, आजाद की ओर बढ़े।

"वाह भाई, खूब मिले ! मुझे तुम्हारी ही तलाश थी।" कहकर आजाद ने भगतसिंह को गले से लगा लिया और दो क्रांति के अजस्र स्रोत मिलकर एक हो गये।

कुछ दिन बाद भगतसिंह पुनः लाहौर लौट गये।

लाहौर पहुंचते ही वह पूरी शक्ति से 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना में जुट गए। उसका संविधान बनाने में श्रेष्ठ मनुष्य, श्रेष्ठ साथी और श्रेष्ठ क्रांतिकारी कदम-ब-कदम उनके साथ थे। भारतीय क्रांति में बहुत-से ऐसे लोगों ने अपनी जानें कुर्बान की हैं, जो हमेशा खामोश रहे और अपनी जिन्दगी भी उन्होंने खामोशी से भारत मां की सेवा में समर्पित कर दी, लेकिन भारतीय क्रांति के इतिहास में उनका नाम नहीं आया। ऐसे ही लोगों में भगवतीचरण भी थे। भगतसिंह के साथी, उनके दाहिने हाथ, उनके मार्गदर्शक। उनके बारे में भी यहां थोड़ा-सा लिखना आवश्यक है।

भगवतीचरण भी नेशनल कालेज के विद्यार्थी थे, लेकिन भगतसिंह से दो कक्षा ऊपर थे। कालेज में सभी एक-दूसरे को देखते थे, लेकिन आत्मीयता नहीं थी। भगवतीचरण शहर में रहते थे। उन्होंने यूनिवर्सिटी

से साइन्स में इन्टर पास कर लेने के बाद असहयोग किया था।

उनका कद लगभग छ: फुट का था। दोहरा, कसरती, चुस्त बदन। गोल-सा गम्भीर चेहरा, गंदुमी रंग, जरा भारी होंठ, आंखें चश्मों के पीछे छुपी हुई। वे लाहौर में पैदा हुए थे, परन्तु वंशक्रम से गुजराती ब्राह्मण थे। भगवतीचरण अपने आपको पंजाबी कहते थे और इतना शुद्ध पंजाबी उच्चारण करते थे कि उनके बहुत अंतरंग लोगों के सिवाय शायद ही कोई जानता हो कि उनके पूर्वज गुजरात से आगरा और आगरे से लाहौर में आकर बसे थे।

गुप्त संगठन के कार्य का क्षेत्र तैयार करने के लिए पंजाब में एच० आर० ए० का पर्चा आया तो था जयचन्द्र जी के सूत्रों से, परन्तु रखा गया था भगवतीचरण के मकान पर ही। इसे बांटने के आयोजन में भी भगवतीचरण ने पूरा सहयोग दिया। एक बार आंतरिकता हो जाने पर भगवतीचरण से निकटता बढ़ते जाना एकदम स्वाभाविक था।

इन्हीं दिनों गुप्त संगठन के कार्य का क्षेत्र तैयार करने और जनता में उग्र ट्रीय भावना जगाने के लिए नौजवान भारत सभा की स्थापना कर ली गई थी। नौजवान भारत सभा के मुख्य सूत्रधार भगतसिंह एवं भगवतीचरण ही थे। सभा का कार्य प्रकट था और सार्वजनिक जीवन से सम्पर्क रखने वाले विश्वस्त कार्यकर्ताओं को उसमें सुविधा से लपेटा जा सकता था। यह संस्था गुप्त संगठन के लिए सार्वजनिक आधार थी। भगतसिंह जनरल सेक्रेट्री और भगवतीचरण प्रोपेगण्डा सेक्रेट्री बने। इसके साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र से प्रमुख सहयोग देने वाले थे—साथ धनवंतरी और एहसान इलाही। कुछ ही दिनों में कांग्रेस में समाजवादी प्रवृत्ति रखने वाले सभी नौजवान इसके सहयोगी बन गये। यह संगठन भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों में फैलता चला गया।

इस संगठन को स्थापित करने में भगतसिंह का ध्येय यह था कि जन-मानस से जोड़े बिना सशस्त्र क्रांति का प्रयत्न केवल आतंकवाद के सहारे सफल नहीं हो सकता। जन-जीवन से सम्पर्क स्थापित करना इस सभा का मुख्य उद्देश्य था। जब सभा ने गदर पार्टी के शहीद युवक शिरोमणि करतारसिंह सराबा का बलिदान-दिवस एक खुले उत्सव के

रूप में मनाया तो सनसनी फैल गयी। उत्सव में सराबा का एक बड़ा चित्र (जो इसी अवसर के लिए बनवाया गया था) सफेद खद्दर से ढक-कर रखा गया। जब भगवतीचरण की धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गा भाभी एवं सुशीला दीदी ने अपनी-अपनी उंगली काट कर उस खद्दर पर खून का अभिषेक किया तो उपस्थित जनता देशभक्ति और बलिदान की भावना से अभिभूत हो उठी। एक शहीद क्रांतिकारी का बलिदान-दिवस इस तरह मनाना ऐतिहासिक घटना थी और सराबा चित्र का अनावरण गुप्त आन्दोलन का जनता के मानस-क्षेत्र में प्रथम उद्घाटन ही था।

भारतीय भाषाओं एवं संस्कृति की रक्षा, शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाना और कुरीतियों को दूर करना भी सभा का उद्देश्य था, पर यह सब किले की दीवार की तरह थे। असली उद्देश्य था, इनके सहारे जनता में पहुंच कर राजनैतिक लक्ष्य की सिद्धि करना। सभा का सदस्य बनते समय हर एक को शपथ लेनी पड़ती थी कि वह अपने हित से देश के हित को श्रेष्ठ समझेगा। नौजवान भारत सभा के उद्देश्य इस प्रकार थे—

1. समस्त भारत के मजदूरों और किसानों का एक पूर्ण, स्वतंत्र गणराज्य स्थापित करना।

2. एक अखण्ड भारत-राष्ट्र के निर्माण के लिए देश के नौजवानों में देश-भक्ति की भावना उत्पन्न करना।

3. उन आर्थिक, सामाजिक और औद्योगिक आंदोलनों के साथ हम-दर्दी रखना, सहायता करना जो सांप्रदायिकता विरोधी हों और किसान मजदूरों के आदर्श गणतांत्रिक राज्य की प्राप्ति में सहायक हों।

4. किसान और मजदूरों को संगठित करना।

इस संविधान का अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू यह है कि नौजवान भारत सभा ने पूर्ण स्वतन्त्रता की यह घोषणा 1926 के आरम्भ में की, जबकि देश के सबसे बड़े राजनैतिक दल, कांग्रेस ने ऐसी घोषणा 1927 की मद्रास कांफ्रेंस में की, जिसके सभापति डाक्टर अन्सारी थे।

इस समय भगतसिंह बराबर दूसरे प्रान्तों से सम्पर्क बनाये हुए थे। उनका एक पैर लाहौर मे रहता था, एक बाहर। वह संगठन को अधिक से अधिक मजबूत कर रहे थे।

पांच

29 जुलाई, 1927।

भगतसिंह बाहर से लौटे थे और अमृतसर स्टेशन पर गाड़ी से उतर रहे थे। अपनी आदत के अनुसार उन्होंने इधर-उधर भागने की कोशिश की कि कोई पीछा तो नहीं कर रहा है और बहुत चौकन्ने भाव से स्टेशन से बाहर आये। कुछ आगे बढ़े तो एक पुलिस वाला उनकी ओर बढ़ता नजर आया। उन्होंने कदम तेज किये, उसने भी चाल बढ़ा दी। वे दौड़ पड़े, वह भी उनके पीछे दौड़ पड़ा। भरा हुआ पिस्तौल उनकी जेब में था, लेकिन उन्होंने अपना संतुलन बनाये रखा।

आंख-मिचौनी आरम्भ हो गई।

वह एक गली में घुसते दूसरी में जा निकलते। पीछा करने वाला भी तेज था, वह भी उसी गली में जा पहुंचता। वे और आगे बढ़ जाते। यूंही दौडते-दौड़ते एक मकान के बोर्ड पर उनकी नजर पड़ी। लिखा था—सरदार शार्दूलसिंह एडवोकेट। वे आंख बचाकर मकान के भीतर चले गये। एडवोकेट साहब मेज पर बैठे फाइलें देख रहे थे। भगतसिंह ने स्थिर और शांत भाव से सब बातें उनसे कह दीं और पिस्तौल उनकी मेज पर रख दिया। एडवोकेट साहब ने पिस्तौल मेज की दराज में रखा, नौकर को आदेश दिया कि भगतसिंह को नाश्ता कराये और खुद द्वार पर आकर टहलने लगे। कुछ देर बाद पुलिस वाला भी जा पहुंचा।

"वकील साहब, इधर एक सिक्ख नौजवान आया है ?" सिपाही ने पूछा।

"हां, आया तो था दौड़ा-दौड़ा एक नौजवान ! कोट-पाजामा पहने था, वही तो नहीं ?"

"जी हां, वही तो है ! बहुत मशहूर चोर है, किधर गया ?"

वकील साहब के मकान से कुछ आगे क्रांतिकारी विचारों के पंजाबी मासिक 'किर्ती' का दफ्तर था, वकील साहब ने उधर इशारा करते हुए कहा—"उस दफ्तर की ओर गया है।"

बात ठीक थी। क्रांतिकारी भगतसिंह 'किर्ती' की तरफ नहीं जाएगा

तो क्या एक वकील के यहां शरण लेने आएगा ? भगतसिंह जब नाश्ता कर रहे थे तो 'किर्ती' का दफ्तर पुलिस ने घेर लिया था।

दिन भर भगतसिंह घर के भीतर ही रहे। रात में पिस्तौल वकील साहब के घर छोड़ा, छहराटा स्टेशन से ट्रेन में बैठ गये। लाहौर स्टेशन पर उतर करके कुछ देर प्लेटफार्म पर खड़े रहे। पिस्तौल उनके पास नहीं था, इसलिए काफी निश्चिन्त थे। जब कोई उनके पास नहीं आया तो ये स्टेशन से बाहर निकले और तांगे में बैठकर चल पड़े। कुछ दूर जाने पर तांगा पुलिस ने घेर लिया और उनके हाथों में हथकड़ियां डाल दीं। पुलिस उन्हें थाने ले जा रही थी। कोई परिचित मिल गया तो उन्होंने अपने पिता के पास गिरफ्तारी की सूचना भिजवा दी।

इस गिरफ्तारी का आधार कुछ था और नाम कुछ था। लाहौर में दशहरे का जो मेला होता था, उसकी भीड़ पर किसी ने बम फेंक दिया था। दस-बारह आदमी मर गये थे और पचास से अधिक घायल हुए थे। इसे दशहरा बम-काण्ड कहा गया। आम जनता क्रांतिकारियों को बम-पार्टी कहती थी। यह बात सारा देश जानता था कि क्रांतिकारी लोग बम-पिस्तौल से अंग्रेजों को डराना चाहते थे। चांदनी चौक में लार्ड हार्डिन्ज पर 23 दिसम्बर 1912 को बम फेंका जा चुका था। काकोरी केस तो 1925 में हुआ था, जिसमें चलती हुई ट्रेन को रोककर सरकारी खजाना लूट लिया गया था।

इस पृष्ठभूमि में जब 1926 के दशहरे पर वह बम फटा तो सबके ध्यान में क्रांतिकारी कौंध गये। अंग्रेजी सरकार की खुफिया पुलिस ने इस अवसर का पूरा फायदा उठाया और यह बम क्रांतिकारियों ने फेंका है, संदेह की इस चिंगारी को खूब हवा दी। इससे उसे दो फायदे थे—पहला यह कि जनता में क्रांतिकारियों के प्रति नफरत फैलती थी, दूसरा यह कि संदिग्ध क्रांतिकारियों को फंसाने में पुलिस को सुविधा प्राप्त होती थी।

ऊपर से देखने में ऐसा लगता था कि भगतसिंह की गिरफ्तारी दशहरा बम-काण्ड के सिलसिले में हुई है, पर इस बात में कोई तुक नहीं थी। चन्नणदीन नाम के आदमी ने बम फेंका था। जानकार लोग उसे पुलिस

का ही आदमी कहते हैं। वह पुलिस के इशारे पर ही साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने के लिए यह सब करता था। बाद में वह दुष्टात्मा सांप के काटने से मर गया। वास्तविक बात यह थी कि भगतसिंह को गिरफ्तार करके पुलिस काकोरी केस के फरारों और दूसरे सम्बन्धित क्रांतिकारियों की खोज-खबर लेना चाहती थी। काकोरी-कांड को अन्तिम रूप देने के लिये क्रांतिकारियों की जो बैठक मेरठ में हुई थी, उसमें भगतसिंह निमंत्रित थे। वे उसमें सम्मिलित न हो सके थे—इसकी सूचना पुलिस के पास थी। यह बात इससे भी सिद्ध है कि काकोरी केस के निर्माता पुलिस अधिकारी खान बहादुर तसद्दुक हुसेन स्वयं लाहौर आये थे और उन्होंने भगतसिंह से स्वयं पूछताछ की थी।

भगतसिंह ने इस बन्दी जीवन में अद्भुत क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया। पुलिस के त्रास सहन में वे चट्टान सिद्ध हुए और अपने रहस्यों को छिपाये रखने में भोलेपन का उन्होंने ऐसा अभिनय किया कि चालाक अफसर भी दुविधा के चक्कर में फंस गये। पुलिस की हवालात अब भी गांव की चौपाल नहीं है कि आदमी वहां बैठा आराम से बातें करता रहे, फिर यह तो अंग्रेजों के राज्य की बात है। छानबीन भी एक ऐसे क्रांतिकारी की हो रही थी, जिस पर पुलिस की निगाह तो बहुत दिन से थी (1924 से) पर अपनी होशियारी की वजह से जो पुलिस के हाथ नहीं आ रहा था और अब लाहौर के किले में एकदम उसकी मुट्ठी में था।

दशहरा बम-काण्ड तो बहाना था। पूछताछ का निशाना तो दल और काकोरी के फरार अभियुक्त थे। पुलिस अफसर अपनी बातों पर आते, भगतसिंह दशहरा बम-कांड की गैर-इंसानी हरकत की निंदा करने लगते। ये सब वे इतने निश्चिन्त भाव से करते कि उनका चेहरा बिल्कुल शांत रहता। अफसरों के कागज कुछ कहते, भगतसिंह के बोल कुछ। अफसर सब कुछ कर सकते थे। उनके गुस्से पर किसी की रोक न थी, जितनी अधिक से अधिक यंत्रणा दे सकते थे, अंग्रेजों ने उन्हें दी, लेकिन भगतसिंह एकदम शांत, अविचलित बने रहे।

भगतसिंह 15 दिन लाहौर के किले में रहे और बाद में बोस्टर्ल की

जेल में भेज दिए गए। उनके पिता सरदार किशनसिंह के प्रभाव और कानूनी कार्यवाहियों के कारण पुलिस भगतसिंह को मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने को बाध्य हुई। वह उनसे कोई बात कहला न सकी थी, इसलिए कुछ ही सप्ताह बाद भगतसिंह जेल से मुक्त हो गये। मुक्ति का कारण था हाइकोर्ट द्वारा जमानत की स्वीकृति। वह जमानत उस समय के अखबारों के लिए एक विशेष समाचार बन गई थी, क्योंकि यह जमानत 60 हजार रुपये की थी। इससे स्पष्ट है कि पुलिस ने उनके भयंकर मनुष्य होने के बारे में कैसी रिपोर्ट दी होगी। फिर भी हाईकोर्ट के जज जमानत मानने को मजबूर थे, क्योंकि उस रिपोर्ट में भगतसिंह के विरुद्ध सन्देह चाहे लाख थे, पर भगतसिंह की स्वीकृति का कोई शब्द तो न था और न कोई ऐसा प्रमाण ही, जो अदालत में टिक सके।

60 हजार रुपये उस युग में बहुत थे। फिर एक सरकार-विरोधी आदमी के लिए तो बहुत से भी ज्यादा थे। सरदार किशनसिंह के मित्र बैरिस्टर दुनीचन्द (लाहौर वाले) ने 30 हजार की जमानत दी और 30 हजार की श्री दौलतराम ने दी।

पिता पुत्र के दृष्टिकोण में अन्तर था, पर जीवन के आदर्श का नहीं। पिता का दृष्टिकोण आतंकवादी क्रांतिकारियों से मिलता-जुलता था। उनका कहना था, "शत्रु पर चोट करो और बार-बार चोट करो। चोट खाओ मत, ताकि तुम दुबारा चोट खाने योग्य रह सको।" यही विशुद्ध आतंकवादी क्रांतिकारियो का सिद्धांत है। भगतसिंह इसी क्रांति को जन-क्रांति में परिवर्तित करना चाहते थे। उनका कहना था—"इस तरह चोट खाओ, इस तरह अपनी आहुति दो कि चोट मारने का काम उन लोगों का न रहे और जनता उसे अपने हाथों में ले ले।" अपने आदर्श के लिए भगतसिंह ने ऐसा कर्म किया कि देश के इतिहास में इसका कोई जोड़ नहीं, पर उस कर्म के लिए उनके पिता ने इतना सहा कि वह भी बेजोड़ है।

छः

भगतसिंह में बगावत और अनुशासन का अजब मिलाप था। वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि जिन्होंने 60 हजार की जमानत दी है, उनके प्रति उनका क्या दायित्व है। वे ऐसा कोई काम नहीं कर सकते थे, जिससे उनके जमानती किसी तरह से खतरे में पड़ें। उनके लिये सरदार किशनसिंह ने लाहौर के पास खासरियां में एक डेरी खुलवा दी। भगतसिंह डेरी का काम देखने लगे। इन दिनों उन्होंने व्यापारिक प्रतिभा का बड़ा अच्छा परिचय दिया। वे स्वयं सरदार किशनसिंह के साथ जाकर भैंसें खरीदकर लाये और दूसरे प्रबन्धों में भी उन्होंने दिलचस्पी ली।

सुबह चार बजे से उठकर भैंसों का दूध निकालना, दिन निकलने के साथ ही तांगे में दूध के बर्तन लादकर लाहौर ले जाना, अपने ग्राहकों को उसे देना, उनका हिसाब रखना, उनसे पैसे लेना और जरूरत की चीजें खरीदना। ये सब काम वे एक समझदार व्यापारी की तरह करते थे। किसी दिन नौकर न हो तो गोबर भी अपने हाथ से उठाते थे, लेकिन इस सबके बाद भी क्रांतिकारी गतिविधियां कायम थीं। डेरी दिन में डेरी रहती थी और रात में क्रांतिकारियों की धर्मशाला बन जाती थी। भगतसिंह एक बड़ा भिगौना खरीद लाये थे, साथ ही एक स्टोव भी। ठाठ से गरम दूध साथियों को मिलता था। वहीं सलाह-मशविरे होते थे, योजनायें बनती थीं, गप-शप भी होती थी।

फिर भी भगतसिंह जमानत में जकड़े हुए थे और इस जकड़न को तोड़ने में लगे हुए थे। वे स्वयं ही सरकार को जमानतियो की ओर से लिखते रहते थे कि या तो भगतसिंह पर मुकदमा चलाओ या जमानत समाप्त करो। पत्रों में भी इस सम्बन्ध में चर्चा होती रहती थी। सरकार के लिये यह एक प्रश्नचिह्न था, तभी श्री बोधराज ने पंजाब कौंसिल में सवाल उठाया कि सरकार के पास सबूत हैं तो वह भगतसिंह के खिलाफ मुकदमा क्यों नहीं चलाती ? बाद में डाक्टर गोपीचन्द भार्गव ने भी ऐसे ही प्रश्न का नोटिस दिया। सरकार ने जमानत समाप्त होने की घोषणा कर दी और भगतसिंह मुक्त होकर अपने काम में लग गये।

जमानत हटते ही डेरी से भगतसिंह का ध्यान हट गया। ग्राहकों को समय पर दूध नहीं पहुंचा तो ग्राहक टूटे और ग्राहक क्या टूटे ? डेरी ही टूट गई। इस टूट का बोझ भी सरदार किशनसिंह पर ही पड़ा। अप्रैल-मई 1928 तक भगतसिंह का कुछ सम्बन्ध घर से बना रहा। इसके बाद वे पूरी तरह अन्तर्ध्यान हो गए। अपने जीवन की पूर्णाहुति में जुट गए।

सात

भगतसिंह, सुखदेव और शिववर्मा के प्रयत्नों से उत्तर-भारत के प्रांतों के क्रांतिवादी प्रतिनिधियों की एक बैठक की योजना दिल्ली में की गई थी। यह बैठक 8 या 9 सितम्बर 1928 को 'फिरोजशाह किले' के खण्डहरों में हुई थी। इस बैठक में पंजाब से सुखदेव और भगतसिंह, राजपूताना से कुन्दनलाल, युक्तप्रांत से शिववर्मा, ब्रह्मदत्त मिश्र, जयदेव, विजयकुमार सिन्हा, सुरेन्द्रनाथ पाण्डे और बिहार से फणीन्द्रनाथ घोष और मनमोहन बैनर्जी आये थे। आजाद इस बैठक में नहीं आ पाये थे। भगतसिंह और शिव उनसे मिल चुके थे, आजाद ने आश्वासन दे दिया था कि बहुमत से जो निश्चय होगा, उसे वे स्वीकार कर लेंगे। बंगाल के प्रतिनिधि भी इस बैठक में शामिल नहीं थे। शिववर्मा कलकत्ता जाकर बंगाल के लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा कर आये थे। बंगाल के उस समय के क्रांतिकारी नेताओं ने सहयोग देने के लिए विकट शर्तें रखी थीं। उनकी पहली शर्त थी कि सभी प्रांतों का क्रांतिकारी आंदोलन 'अनुशीलन दल' के तत्कालीन नेता के व्यक्तिगत निरंकुश अनुशासन में रहेगा। दूसरी शर्त थी कि अभी केवल साथी भरती करने, रुपया और हथियार इकट्ठा करने का ही काम किया जाए। किसी ऐसे काम में हाथ न डाला जाए, जिससे सरकार के चौंकने की आशंका हो।

नये उठते संगठन को अनुशीलन की पहली शर्त मंजूर नहीं थी। यह ठीक है कि इससे पहले क्रांतिकारी दलों में 'दादा' लोगों का व्यक्तिगत

अनुशासन ही चलता था। पंजाब में जयचन्द्रजी और युक्त प्रांत में जे० एन० सान्याल का निष्क्रिय परन्तु निरंकुश नेतृत्व उसी 'दादाडम' परंपरा का परिणाम था। नया खून इससे ऊब चुका था, नये खून में प्रजातंत्र की भावना जाग चुकी थी। ये लोग प्रांतीय दलों का केन्द्रीयकरण करना चाहते थे, परन्तु व्यक्तिगत तानाशाही के अधीन नहीं, संयुक्त उत्तर-दायित्व और नेतृत्व द्वारा। 'अनुशीलन' के नेता ने निरंकुश नेतृत्व की मांग तो की, परन्तु उनका प्रबन्ध और सामर्थ्य ऐसा था कि कलकत्ते में शिववर्मा को एक रात टिकाने के लिए वे प्रतिदिन अपने चार-पांच गुप्त स्थान दिखा देते और जगह न पा सकते। शिववर्मा के अनुभव और परामर्श के अनुसार बंगाल से सहयोग की आशा छोड़ दी गई।

पहले-पहल दिल्ली की बैठक में ही सशस्त्र क्रांतिकारी प्रयत्न के लिए अन्तर्प्रान्तीय आधार बनाया गया। जयचन्द्रजी और जे० एन० सान्याल दोनों को ही इस बैठक से अलग रखा गया, क्योंकि साथी पुरानी रूढ़ि को छोड़कर आंदोलन के लक्ष्य और संगठन के लिए नया मार्ग अपनाना चाहते थे। अब तक भिन्न-भिन्न प्रांतों में क्रांतिकारी दलों के अपने-अपने नाम थे। दिल्ली की बैठक में भगतसिंह और सुखदेव ने सभी प्रांतों से प्रतिनिधि लेकर एक केन्द्रीय समिति बनाई और पूरे संगठन का नाम 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजा-तंत्र सेना' रखे जाने का प्रस्ताव रखा।

अपने संगठन के नाम में 'सोशलिस्ट' या समाजवादी शब्द जोड़ने को इस बात का प्रमाण नहीं बता दिया जा सकता कि इन्होंने मार्क्सवाद का वैज्ञानिक सिद्धांत और आंदोलन का ढंग खूब समझ लिया था, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि अपनी ज्ञान की सीमा के अनुसार उस ओर बढ़ रहे थे। मुख्य बात यह थी कि ये लोग शोषण की श्रेणी को समझ चुके थे।

दिल्ली में फिरोजशाह के खण्डहर में क्रांतिकारियों के प्रतिनिधियों की जो अन्तर्प्रान्तीय सभा हुई थी, उसमें कुछ खास बातें तय हुई थीं। सशस्त्र क्रांति के काम को आगे बढ़ाने के लिए धन की अनिवार्य जरूरत होगी। गुप्त आंदोलन चन्दे से धन इकट्ठा नहीं कर सकता। इसके लिए डकैतियां करनी होंगी, परन्तु जहां तक सम्भव हो डकैतियां बैंकों, खजानों

या डाकखानों में की जायें। देहात के अमीर लोगों के यहां डकैती करने से जनता में दल के प्रति घृणा पैदा हो जाती है, इस बात को दल अपने लिए हानिकारक समझता था।

दिल्ली की बैठक में यह भी स्पष्ट रूप से निश्चय कर लिया गया कि भविष्य में कार्यक्रम किसी एक व्यक्ति के नेतृत्व में नहीं चलेगा। दल के सब हथियार और प्राप्त होने वाला धन केन्द्रीय समिति के हाथ में रहेंगे। कोई भी कार्य करने से पहले सात आदमियों की केन्द्रीय समिति में उस पर विचार किया जाएगा।

इस बैठक में विजयकुमार सिन्हा और भगतसिंह पर अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्ध बनाए रखने का उत्तरदायित्व दिया गया। सुखदेव को पंजाब, शिववर्मा को युक्त प्रांत, कुन्दनलाल को राजपूताना, फणीन्द्रनाथ को बिहार का प्रतिनिधि संगठनकर्ता स्वीकार किया गया। हथियारों और कोष की कमी के कारण यह निश्चय किया गया कि हथियार और कोष पूर्णतः केन्द्रीय समिति के हाथ में रहें। कोष वास्तव में कुछ था ही नहीं। हथियार भी कम ही थे, इसलिए यह तय पाया कि जिस प्रांत में जब आवश्यकता हो, हथियार भेज दिए जायें और लौटकर केन्द्रीय समिति में दे दिए जायें।

इसके पूर्व दल में चन्द्रशेखर आजाद ही ऐसे व्यक्ति थे, जो बड़े होने का दम्भ छोड़कर नये ढंग से नये लोगों के साथ काम करने को तैयार थे। आजाद के अतिरिक्त उस समय नये लोगों में शस्त्रों का उपयोग भी कोई ठीक ढंग से नहीं जानता था। इसलिए सशस्त्र या सैनिक कार्य का नेता उन्हीं को बनाकर 'हिसप्रस' का कमाण्डर-इन-चीफ निश्चित किया गया।

आठ

इस समय आर्थिक कठिनाई का यह हाल था कि दिल्ली की केन्द्रीय सभा में आने वाले प्रांतीय प्रतिनिधि दोनों तरफ का किराया भी नहीं जुटा पा रहे थे। केन्द्रीय समिति की बैठक होते समय जब आठ-दस

रुपये की आवश्यकता हुई तो विजयकुमार ने बिहार से आये फणीन्द्रघोष का वापसी का टिकट बेचकर काम चलाया, ऐसी अवस्था में सबसे पहले आर्थिक समस्या को हल करने की चिन्ता करना आवश्यक था। फणीद्र-नाथ घोष ने जो कि प्रथम लाहौर षड्यन्त्र केस के मामले में मुखबिर बन गया था, बेतिया में डकैती की योजना करने का आश्वान दिया। भागतसिंह और आजाद हथियार लेकर बेतिया पहुंचे। कई दिन उन्होंने बेतिया के मारवाड़ियों की दुकानों को जांचा-परखा, परन्तु सफलतापूर्वक डकैती करने की सुविधा कहीं दिखाई न दी। वे निराश लौट आये।

इन्हीं दिनों 8 नवम्बर, 1927 को वायसराय ने घोषणा की कि भारत के शासन-सुधारों की जांच करके इंग्लैंड की सरकार को अपनी रिपोर्ट देने के लिए लार्ड साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन भारत आयेगा। 3 फरवरी, 1928 को वह कमीशन बम्बई भी पहुंच गया। भारत का जन-जीवन 1924 से ही साम्प्रदायिक दंगों के जाल में फंसा हुआ था, पर साइमन कमीशन भारत क्या आया, भारत एकदम जाग पड़ा। उस दिन सारे देश में हड़ताल मनाई गई और बधाई में 'साइमन गो बैक' (साइमन लौट जाओ) के नारे के साथ ऐसा गरम प्रदर्शन हुआ कि अंग्रेजी सरकार चकरा गई। बम्बई के बाद दिल्ली में काले झंडे दिखाए। मद्रास में पुलिस ने गोली चलाई, जिससे तीन प्रदर्शनकारी मारे गये। कलकत्ता में भी तगड़ी मुठभेड़ हुई। कुछ राजनीतिज्ञों को छोड़कर सारा देश कमीशन के बहिष्कार में उठ पड़ा।

इस समय 'हिसप्रस' के सामने भी बहुत-सी योजनायें थीं। दिल्ली की केन्द्रीय समिति में भगतसिंह ने प्रस्ताव रखा कि साइमन कमीशन पर बम फेंककर प्रजा का असंतोष प्रकट किया जाए। इस प्रस्ताव को केन्द्रीय समिति ने स्वीकार भी कर लिया था। समस्या थी रुपये की। रुपये के अभाव में यह होता कैसे ? इस बीच दल की आज्ञा से कैलाश-पति गोरखपुर के डाकखाने से लगभग एक हजार आठ सौ रुपये उठाकर भाग आया था। कैलाशपति डाकखाने में काम कर रहा था। यह डकैती कर वह भी फरार हो गया। इस छोटी-सी रकम के आधार पर ही काम चल रहा था।

लाहौर में नौजवान भारत सभा को यह निर्देश दिया गया था कि नगर में साइमन कमीशन के आने पर जहां तक हो सके सभी राजनैतिक दलों को मिलाकर विकट प्रदर्शन किया जाए। लाहौर में साइमन कमीशन के बहिष्कार के प्रदर्शन का नेतृत्व सभा ही कर रही थी। उनके क्रांतिकारी सदस्यों की टोली स्टेशन पर उस जगह आ अड़ी थी, जहां से गुजरने के सिवा साइमन कमीशन के सदस्यों के लिए और कोई चारा न था। भगतसिंह स्वयं लाला लाजपतराय के पास गये थे और उन्हें भीड़ के आगे रहने के लिए राजी कर आये थ। लालाजी को क्रांतिकारियों की टोली ने अपने बीच में घेर लिया था और एक नवयुवक ने उन पर छतरी भी तान ली थी।

भीड़ अथाह थी और लाहौर के पुलिस सुपरिटेंडेंट मिस्टर स्काट अपने दूसरे अफसरों के साथ स्वयं स्टेशन पर आये थे। उन्होंने मौके का निरीक्षण कर तुरन्त ताड़ लिया कि जब तक लालाजी और नौजवानों की यह टोली यहां से न हटे, साइमन कमीशन के सदस्यों को प्रदर्शन की तेज बौछारों से नहीं बचाया जा सकता। इसलिए उन्होंने अपने विश्वसनीय असिस्टेंट पुलिस सुपरिटेंडेंट मिस्टर साण्डर्स को रास्ता साफ करने का काम सौंपा और जरूरत पड़े तो लाठी चार्ज करने की बात भी कही। पहले जनता की भीड़ पर लाठी चलाई गई। समारोह में जोश के साथ इकट्ठे हो जाना और बात है और विद्रोह में होश के साथ जमें रहना दूसरी बात। जनता पहली स्थिति में थी। लाठी-चार्ज से वह हटी, लौटी, बिखरी, इधर-उधर हट कर जमी और रास्ता काफी खुला। पर लाला लाजपतराय अभी अपनी जगह पर थे और नौजवानों की टोली उन्हें घेरे खड़ी थी। इसका अर्थ था कि प्रदर्शन का मोर्चा अभी ज्यों का त्यों कायम था और सरदार किशनसिंह और भगतसिंह उसे अपना बल दे रहे थे।

स्काट से सलाह कर साण्डर्स इस टोली के सामने आया और पुलिस के सिपाहियों को भीड़ को पीछे धकेलने का आदेश दिया। पर यह रेत की दीवार न थी, वह फौलादी चट्टान थी। तब साण्डर्स बड़ा-सा डण्डा लेकर आगे आया और बाज की तरह भीड़ पर टूट पड़ा। लाला लाजपतराय के पीछे भीड़ इतनी थी कि पीछे हट सकने का कोई अवसर न

था। सामने से पुलिस लाठी-चार्ज कर रही थी। नवयुवक लालाजी को चारों ओर से घेरकर चोट से बचाये थे। पुलिस की मार के बावजूद यह मोर्चा टूट नहीं पा रहा था। तभी साण्डर्स की लाठी लालाजी के ऊपर तनी हुई छतरी पर पड़ी। तनी हुई छतरी टूटी और लाला जी के कंधे पर भी चोट आ गई।

नौजवान साथी अब भी लालाजी को घेरकर जमे रहने को तैयार थे, पर चोट खाने के बाद लालाजी ने हुक्म दे दिया—"पुलिस की जालिमाना हरकत की मुखालफत में मुजाहिरे को मुअतल कर दिया जाए (पुलिस के इस अमानुषिक व्यवहार के विरोध में प्रदर्शन स्थगित कर दिया जाए)।" हतोत्साह होकर नौजवानों को प्रदर्शन स्थगित कर देना पड़ा।

उस संध्या कांग्रेस की ओर से 'मोरी दरवाजे' के बाहर मैदान में कमीशन के विरोध में एक सार्वजनिक सभा हुई। लाला लाजपतराय भाषण दे रहे थे। सभा में डिप्टी पुलिस सुपरिंटेंडेंट नील भी खड़ा था। लालाजी ने अपने ओजपूर्ण वक्तव्य में सुबह की घटना की निन्दा करते हुए कहा—"जो सरकार निहत्थी प्रजा पर इस तरह के जालिमाना हमले करती है, उसे तहजीबयाफ्ता (सभ्य) सरकार नहीं कहा जा सकता और ऐसी सरकार कायम नहीं रह सकती। मैं आज चैलेंज देता हूं कि इस सरकार की पुलिस ने मुझ पर जो वार किया है, वह एक दिन इस सरकार को ले डूबेगा।" अंग्रेज अफसरों को लक्ष्य कर लालाजी ने अपनी बात अंग्रेजी में दोहराई—"I DECLARE THAT THE BLOWS STRUCK AT ME WILL BE THE LAST NA LS IN THE COFFIN OF THE BRITISH RULS IN INDIA." (मैं घोषणा करता हूं कि मुझ पर जो चोट पड़ी है वह भारत में अंग्रेजी राज्य के कफन की आखिरी कील साबित होगी।)

17 नवम्बर, 1928 को लालाजी का देहान्त हो गया। जनता में विदेशी शासन विरोधी भावना और लालाजी के लिए आदर उमड़ रहा था। लाला जी की अर्थी के जुलूस में लाख-डेढ़ लाख आदमी रहे होंगे, डाक्टर गोपीचन्द भार्गव तो बिलख-बिलखकर रोये। लाहौर में कोई ऐसा

हिन्दू-मुसलवाने न होगा, जिसने मातम न बनाया हो। लाहौर के सभी स्वयंसेवक दलों ने शव-यात्रा के प्रबन्ध में साथ दिया।

लालाजी की मृत्यु को एक महीना भी न बीता था कि भगतसिंह ने राय दी कि लालाजी पर आघात किये जाने के राष्ट्रीय अपमान का बदला लिया जाए। दिसम्बर के पहले सप्ताह में लाहौर के 'मजंग' मौहल्ले के मकान में इस बात का फैसला केन्द्रीय समिति ने कर लिया। केन्द्रीय समिति के अधिकांश लोग लाहौर में मौजूद थे। शिव वर्मा और फणीन्द्र बहुत दूर थे, उन्हें बुलाने में बहुत समय लग जाता।

कई दिन तक साण्डर्स और स्काट के आने-जाने के रास्ते की देख-भाल की गई। साण्डर्स कभी तो गोलबाग के बीचोंबीच से गुजरता था और कभी टाउनहाल के सामने से होकर गोल बाग की बगल से आता-जाता था। दफ्तर के सामने मोटर साइकिल खड़ी करने की जगह उसकी निश्चित थी।

17 दिसम्बर, दोपहर बाद 'मजंग' से जयगोपाल को पुलिस के दफ्तर के सामने यह देखने के लिए भेज दिया कि साण्डर्स दफ्तर में है या नहीं। जयगोपाल कई दिन से साण्डर्स के आने-जाने पर नजर रख रहा था। वह साण्डर्स को स्काट समझे हुए था। उसने शायद स्काट को देखा ही नहीं था। राजगुरु भी वह जगह देख चुका था। साइकिल का इसे अभ्यास नहीं था, इसलिए वह एक रिवाल्वर लेकर बड़ी शांति से मजे-मजे में पुलिस-दफ्तर की ओर चला कि ठीक समय जगह पर पहुंच जाए। इसके बाद आजाद और भगतसिंह साइकिल पर आये। दो दिन पहले ही जगह का निरीक्षण कर लिया गया था कि कौन कहां खड़ा होगा। मुकाबला पड़ने पर क्या किया जायेगा और पीछा करने वालों से बचकर किस रास्ते से भागा जायेगा।

यह निश्चित था कि भगतसिंह और राजगुरु, साण्डर्स पर ठीक उस समय गोली चलायेंगे जब वह मोटर-साइकिल पर पुलिस दफ्तर के हाते की सड़क के फाटक से बाहर निकलेगा। यहां समीप जयगोपाल एक साइकिल लिए ऐसे खड़ा था, मानो किसी कारण बिगड़ गई साइकिल को ठीक कर रहा हो। यहां साइकिल रखने का प्रयोजन यह था कि यदि

राजगुरु और भगतसिंह की गोली चूक जाए तो भगतसिंह तुरंत यह साइकिल ले साण्डर्स का पीछा कर उसे गोली मार सके।

आजाद स्वयं दफ्तर के सामने कालिज के जंगले के भीतर उस ओर खड़े थे, जहां से गोली चलाने के बाद भगतसिंह और राजगुरु ने डी० ए० वी० कालेज का हाता पार कर बोर्डिंग के भीतर चले जाने का निश्चय किया था। मतलब यह था कि यदि पुलिस के आदमी इनका पीछा करें तो आजाद पीछा करने वालों का रास्ता रोक कर भगतसिंह और राजगुरु को भागने का अवसर देंगे। आजाद के हाथ में माउजर पिस्तौल थी, जिसके पीछे इस पिस्तौल के रखने का खाना राइफल के कुन्दे की तरह जुड़ जाता है और माउजर को राइफल की तरह कन्धे से टिकाकर निशाना लिया जा सकता है। माउजर पिस्तौल साधारण बन्दूक से अधिक दूर तक मार लेता है। माउजर में दस गोलियां एक साथ मैगजीन में भरी जाती हैं। आजाद दो भरी हुई मैगजीनें जेब में और भी रखे हुए थे।

घटना से पहले सन्देह न होने देने के लिए भगतसिंह और राजगुरु पुलिस दफ्तर की सड़क पर खुलने वाले फाटक से जरा हटकर खड़े थे। उन्हें जयगोपाल के इशारे पर आगे बढ़ना था। साण्डर्स ज्यों ही मोटर साइकिल चालू कर अहिस्ता-अहिस्ता फाटक की ओर बढ़ा तभी आड़ में खड़े हुए जयगोपाल ने राजगुरु और भगतसिंह को संकेत किया। साण्डर्स धीमी चाल से फाटक तक पहुंचा ही था कि राजगुरु ने लपककर एक गोली उसकी गर्दन में दाग दी। साण्डर्स उसी गोली से मोटर साइकिल समेत गिर पड़ा। उसके मुंह से मामूली-सी ही चीख निकल पाई। भगतसिंह ने शंका का कोई अवसर न रहने देने के लिए साण्डर्स के सिर और कंधों पर चार-पांच गोलियां और दाग दीं, यह लोग कालेज के हाते की ओर बढ़े।

साण्डर्स के गिरते ही दफ्तर के बरामदे में खड़ा एक सिपाही चिल्ला उठा था। ट्रैफिक इन्सपेक्टर फर्न और दो दूसरे सिपाही भगतसिंह और राजगुरु की ओर दौड़ पड़े। भगतसिंह ने घूमकर फर्न पर गोली चलाने के लिए पिस्तौल उठाई। झुककर बचने के प्रयत्न में फर्न गिर पड़ा।

गोली उसे न लगी । दूसरे सिपाही झिझक गये ।

आजाद ने अपने स्थान से चेतावनी दी—"चलो !"

भगतसिंह और राजगुरु आगे निकल गये । आजाद उनके पीछे रास्ता रोककर खड़े हो गये । इतने में हैड कांस्टेबिल चन्दनसिंह गाली देता हुआ उनके पीछे भागा ।

आजाद ने अपना माउजर राइफल की तरह उठाकर धमकाया, "खबरदार, पीछे हटो !"

दो सिपाही तो रुक गये, परन्तु चन्दनसिंह न रुका । आजाद ने गोली चला दी । चन्दनसिंह एक ही गोली में बांहें फैलाये मुंह के बल गिर पड़ा और किसी ने पीछा न किया । आजाद भी भगतसिंह और राजगुरु के पीछे-पीछे कालेज का हाता पार कर बोर्डिंग में चले गये । यहां आकर आजाद ने राजगुरु को अपनी साइकिल पर बैठा लिया और बोर्डिंग से निकल कर गोल बाग होते हुए 'मजंग' की ओर चले गये । उनके कुछ पीछे-पीछे भगतसिंह भी चले गये । लाहौर का सरकारी क्षेत्र सन्नाटे में था और जनता का क्षेत्र एक मानसिक रोमांच से पुलकित था। भगतसिंह उस संध्या को बेहद उत्फुल्ल थे ।

ठीक है, सरकारी क्षेत्र में सन्नाटा था और जनता के क्षेत्र में पुलकित रोमांच, पर बोध तो कहीं भी नहीं था। सरकार के विख्यात गुप्तचर विभाग को लकवा मार गया था···इतनी बड़ी दुर्घटना हो गई और किसी को हल्का-सा सुराग तक न मिला । खुली सड़क पर योजना का पूर्वाभ्यास हुआ होगा और खुली सड़क पर पुलिस-दफ्तर के सामने एक अंग्रेज अफसर दिन-दहाड़े मार डाला गया । यह किसने किया ? क्यों किया ? इसके पीछे कौन है ? जनता के लिए यह चमत्कारी धड़ाका था । उसके पीछे क्या उद्देश्य है ? या क्या योजना है ? इससे वह भी अपरिचित थी । पर दूसरे दिन सुबह सूरज निकलने से पहले ही सरकारी पक्ष और जनता पक्ष दोनों के सामने बात साफ हो गई । दीवारों पर जगह-जगह अंग्रेजी के छोटे पोस्टर चिपकाए गए थे । इन पोस्टरों का कागज गुलाबी था और स्याही लाल थी । उन पर लिखा था—

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना
नोटिस

नौकरशाही सावधान

जे० पी० साण्डर्स की मृत्यु से लाला लाजपतराय की हत्या का बदला ले लिया गया।

यह सोचकर कितना दुःख होता है कि जे० पी० साण्डर्स जैसे एक मामूली अफसर के कमीने हाथों देश की तीस करोड़ जनता द्वारा सम्मानित एक नेता पर हमला कर उनके प्राण ले लिये गये। राष्ट्र का यह अपमान हिन्दुस्तानी युवकों और मर्दों को चुनौती थी।

आज संसार ने देख लिया है कि हिन्दुस्तान की जनता निष्प्राण नहीं हो गई है। हिन्दुस्तानियों का खून जम नहीं गया है, वे राष्ट्र के लिए प्राणों की बाजी लगा सकते हैं। यह प्रमाण देश के उन युवकों ने दिया है जिनकी देश के नेता निन्दा और अपमान करते हैं।

अत्याचारी सरकार सावधान

इस देश की दलित और पीड़ित जनता की भावनाओं को ठेस मत लगाओ। अपनी शैतानी हरकतें बन्द करो। हिन्दुस्तानियों को हथियार न रखने देने के लिए बनाए तुम्हारे सब कानूनों और चौकसी के बाद पिस्तौल और रिवाल्वर इस देश की जनता के हाथ आते ही रहेंगे। यदि ये हथियार सशस्त्र क्रांति के लिए पर्याप्त न भी हुए तो भी राष्ट्रीय अपमान का बदला लेते रहने के लिए काफी रहेंगे ही। हमारे अपने लोग हमारी निन्दा और अपमान करें। विदेशी सरकार चाहे हमारा कितना भी दमन कर ले, परन्तु हम राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए और विदेशी अत्याचारियो को सबक सिखाने के लिए सदा तत्पर रहेंगे। हम सब विरोध और दमन के बावजूद क्रांति की पुकार को और बुलन्द रखेंगे और फांसी के तख्तों से भी पुकारते रहेंगे—

इन्कलाब जिन्दाबाद

हमें एक व्यक्ति की हत्या का खेद है, परन्तु यह व्यक्ति उस निर्दयी, नीच और अन्यायपूर्वक व्यवस्था का एक अंग था, जिसे समाप्त कर देना आवश्यक था। इस व्यक्ति की हत्या हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन के कारिन्दे के रूप में की गई है। यह सरकार संसार की सबसे अत्याचारी सरकार है।

मनुष्य का रक्त बहाने के लिए हमें खेद है, परन्तु क्रांति की वेदी पर रक्त बहाना अनिवार्य हो जाता है। हमारा उद्देश्य ऐसी क्रांति से है, जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर देगी।

18 दिसम्बर, 1928 ह० बलराज

सेनापति पंजाब हिंसप्रस

इन छोटे पोस्टरों ने एक साथ दो काम किये। पुलिस एकदम स्तम्भित हो गई और जनता हर्ष से पुलकित। पुलिस यानि पूरी सरकारी मशीनरी अपमान से अधमरी हो गई और जनता गर्व से हरी हो उठी। लालाजी के अपमान और मरण का जो कांटा उसके कलेजे में चुभ रहा था, वह पल-भर में निकल गया। उस कांटे ने जो छेद पैदा किया था, उसमें क्रांतिकारियों का प्यार भर गया। इस प्यार में भरोसे की रोशनी थी, बदले की ताजगी थी, संतोष का सुख था। साफ-साफ बात यह है कि क्रांतिकारी युवक अब जनता के मन से जुड़ गये थे, जनता के मन में बस गये थे।

अंग्रेजी सरकार इसे समझ रही थी और उसके अफसर दांत किट-किटा रहे थे, पर उनके सामने, उनकी पहुंच में कोई न था, जिसे वह मसल देते, चबा डालते। वे अंधेरे में भटक रहे थे। नौजवान भारत सभा और स्टूडेंट्स यूनियन के खुले कार्यकर्त्ता उनके सामने थे। पुलिस अन्धाधुन्ध उन्हें पकड़ रही थी, उनके घरों की तलाशियां ले रही थी, पर उनमें से किसी को जब सचमुच ही कुछ पता न था तो पुलिस उनसे क्या पता पाती?

अंग्रेजी सरकार 17 दिसम्बर की दोपहर को हिल गई थी, पर उसी

शाम को वे सब भूखे थे, उनके पास खाने को सूखी रोटी भी न थी, जिन्होंने अंग्रेजी सत्ता को हिला दिया था। बाद में जयगोपाल मुखविर ने कहा था—"मैं आजाद के कहने पर तब अपने मित्र वंशीलाल से मांगकर दस रुपये लाया तो खाने-पीने की व्यवस्था हुई।"

नौ

लाहौर में इकट्ठा हुए दल के लोग एक-एक करके दो दिन में फिरोजपुर, अमृतसर आदि चले गये थे। सबसे कठिन समस्या थी भगतसिंह को लाहौर से निकालने की। यह कल्पना कर लेना कठिन नहीं था कि जिस भगतसिंह के विषय में पुलिस को यों ही सदा संदेह बना रहता था, उनकी लम्बी फरारी के बाद पुलिस उनकी खोज में कितनी परेशान होगी। भगतसिंह केश कटा कर वेश तो बदल चुके थे, लेकिन इससे चेहरे में कितना परिवर्तन आ सकता था? फर्न पर गोली चलाते समय उन्हें तीन-चार सिपाहियों ने अच्छी तरह देखा भी था। उनके पुराने रूप से तो लाहौर की खुफिया पुलिस खूब अच्छी तरह परिचित थी। दाढ़ी उन्होंने साफ करा दी थी जरूर, परन्तु उनकी दाढ़ी बहुत घनी तो कभी न थी। उनको किसी तरह लाहौर से हटाया गया, इस सम्बन्ध में श्री यशपाल ने अपनी पुस्तक 'सिंहावलोकन' के प्रथम भाग में इस तरह लिखा है—

'भगवती भाई 'मेरठ केस' में वारन्ट होने की आशंका के कारण फरार थे ही। उस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हो रहा था। भगवती भाई कांग्रेस में जाना चाहते थे। एक दिन अवसर पाकर भाभी से पूछ गये थे, "कांग्रेस अधिवेशन पर कलकत्ता चलोगी?"

"क्या करूंगी?" भाभी ने कुछ उत्साह नहीं दिखाया।

"मैं जाऊंगा?" भगवती भाई कह गये थे।

सुखदेव लगभग रात के आठ बजे आया। उन दिनों भाभी संस्कृत पढ़ा करती थी। पड़ोसी एक और महिला के साथ मिलकर दोनों ने एक

अध्यापक नियुक्त कर लिया था। भाभी को एक ओर बुला सुखदेव ने प्रश्न किया—"कहीं बाहर जा सकती हो ?"

"कहां ?···क्या काम है ?"

"इस घटना के एक आदमी को बचाकर लाहौर से निकालना है। उसकी मेम साहब बनकर साथ जाना होगा···खतरा है ! सोच लो ! गोली चल सकती है।" सुखदेव भाभी को घूरता रहा।

"कौन आदमी है ?" भाभी ने जानना चाहा।

"कोई भी हो !" जैसी कि उसकी आदत थी।

"चली जाऊंगी।"

"वह रात को यहीं रहेगा···इस पढ़ाई को समाप्त कर दो।"

"अच्छा !"

कुछ देर बाद सुखदेव के साथ एक लम्बा जवान ओवर कोट, हैट पहने एक नौकर के साथ आ गया। भाभी ने उन्हें कमरे में बैठा दिया, स्वयं भी बैठीं और सुखदेव की ओर देखती रहीं। अपरिचित आदमी की ओर क्या देखतीं ?

सुखदेव ने उस आदमी की ओर इंगित कर भाभी से पूछा—"इसे पहचानती हो ?"

भाभी ने जरा ध्यान से देखा—"भगत ?"

भगतसिंह और सुखदेव हंस पड़े।

सुबह तड़के पांच-छ. बजे कलकत्ता मेल से चलने की बात थी। भगतसिंह ओवरकोट का कालर उठाये, हैट माथे पर खींचे और अपना चेहरा 'शची' के चेहरे की आड़ में किये रेलवे प्लेटफार्म पर पहुंचा, भगवती भाई का लड़का शचीन्द्र कुमार बोहरा, इंजीनियर उस समय तीन वर्ष का था। भाभी भी यथाशक्ति चेहरे पर पाउडर मले और अपने सबसे ऊंची एड़ी के जूते से खट-खट करती साथ थीं। भगतसिंह की जेब में भरा हुआ पिस्तौल था। राजगुरु, नौकर के वेश में साथ था। उनकी कमर पर भी भरा हुआ पिस्तौल बंधा हुआ था। पुलिस को संदेह हो जाता तो गोली जरूर चलती।···शची और भाभी दोनों का क्या होता ?

चन्द्रशेखर आजाद भी रामनामी दुपट्टा ओढ़े, माथे पर चन्दन लगाये

हरिओम के साथ हुंकार लेते मथुरा के पण्डा बने इसी ट्रेन के एक डिब्बे में बैठे जा रहे थे।

लखनऊ स्टेशन आ गया। राजगुरु, आजाद पहले ही उतर चुके थे। साहब बहादुर भगतसिंह और आधुनिका दुर्गा भाभी शान से प्लेटफार्म पर उतरे, वेटिंग रूम में भी कुछ देर बैठे और कलकत्ता तार दिया—"भाई साहब के साथ आ रही हूं।" यह तार सुशीला दीदी को दिया गया था। वे उन दिनो सर सेठ छज्जूराम की पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी की शिक्षक-अभिभावक थीं और उन्हीं की तीन मंजिली कोठी में रहती थीं। भगवती भाई भी उन्हीं के साथ थे। दुर्गा भाभी ने तार में भेजने वाले की जगह दुर्गादेवी न लिखकर भूल से दुर्गावती लिख दिया।

भगवती भाई और सुशीला दीदी दोनों हैरान थे, कौन दुर्गावती और कैसा भाई? दुर्गा ने तो कांग्रेस अधिवेशन पर आने से इन्कार कर दिया था! फिर भी वे स्टेशन पर देखने गये।

भगतसिंह और दुर्गा भाभी कलकत्ता स्टेशन पर उतरे तो भगवती भाई और सुशीला दीदी वहां उपस्थित थे। भगवतीचरण ने दुर्गा भाभी को इस रूप मे देखा तो आश्चर्य से मुग्ध रह गये। असल में दुर्गा भाभी की शक्ति का उनके लिए नया प्रदर्शन था। उनके मुंह से निकल पड़ा—"वाह, मैंने तुम्हें आज पहचाना।"

सुश्री वीरेन्द्र सिन्धु ने अपनी पुस्तक 'युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' में भगवतीचरण के बारे में लिखा है—

"क्रांतिकारियों में एक से एक विशिष्ट व्यक्तित्व हुए हैं, पर भगवतीचरण अपनी जगह अनुपम हैं, अकेले हैं। अपनी पत्नी को इस रूप में देखकर किसी के मन में भी क्षोभ हो सकता है, पर कितना विशाल मन था उनका कि हल्की बात वे सोच ही नही सकते थे। सचमुच वे क्रांतिकारी और लक्ष्यदर्शी मानव थे। भगवतीचरण और दुर्गा भाभी की क्रांति जोड़ी को प्रणाम···।"

भगतसिंह और दुर्गा भाभी एक दिन होटल में रहे, दूसरे दिन सर सेठ छज्जूराम की कोठी मे चले गये और एक सप्ताह से अधिक वहीं रहे। सर सेठ का भवन होने के कारण वह स्थान सी० आई० डी० के

संदेह से सुरक्षित था। सुशीला दीदी ने भगतसिंह के बारे में सर सेठ की पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी को बता दिया था। उन्होंने वहां रहने और निश्चिन्त रहने की अनुमति दे दी थी। इन लोगों को ऊपर की मंजिल में ठहराया गया था और भोजन आदि की व्यवस्था स्वयं श्रीमती लक्ष्मीदेवी करती थीं। उन दो के अतिरिक्त भगतसिंह का वास्तविक परिचय किसी को न था।

भगतसिंह जब कलकत्ता पहुंचे तो वहां कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। राजनैतिक दृष्टि से वातावरण बहुत उत्तेजनात्मक था। कांग्रेस में विचार का मुख्य विषय था—अंग्रेजी सरकार को यह अल्टीमेटम देना कि यदि एक वर्ष के भीतर नेहरू कमेटी की रिपोर्ट (लगभग औपनिवेशिक स्वराज्य) को स्वीकार न करेगी तो फिर कांग्रेस कभी भी पूर्ण स्वराज्य से कम पर राजी न होगी। नौजवानों के नेता पं० जवाहर लाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस सरकार को समय देने के विरुद्ध थे और इस प्रकार पुरानी और नई पीढ़ी में गहरी कशमकश थी। वातावरण उत्तेजना का था और साण्डर्स वध की घटना ने उसे और भी गरम कर दिया था। पंडित मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष थे। देश-भर के राजनीतिक नेता कलकत्ता आये हुए थे और सरकार के गुप्तचर भी। भगतसिंह बंगाली ढंग की धोती-कुरता पहने और ऊपर साल ओढ़े उत्तेजना और उल्लास के इस वातावरण में घूम रहे थे।

भगतसिंह के दिन भर घर में बने रहने से सेठ के लम्बे-चौड़े परिवार के लोगों को कुछ शंका न हो, इसलिए सुशीला दीदी ने कह दिया था कि हमारा भांजा है, रास्ते में बीमार हो गया था। दवाई की लेबिल लगी एक शीशी भी भगतसिंह की खाट के नजदीक पड़ी रहती, जिसमें से कुछ पानी समय-समय पर बहा दिया जाता। भगतसिंह दिन में खाते और सोते, रात में घूमने निकल जाते। एक सप्ताह में दूसरी जगह प्रबन्ध हो जाने पर वह चले गये।

दस

लाला लाजपतराय की हत्या का बदला सफलतापूर्वक लेकर भी पुलिस के हाथ न पड़ने से क्रांतिकारियों के क्षेत्र में हिंसप्रस की प्रतिष्ठा बढ़ गई थी। इसके अतिरिक्त बंगाल के नवयुवक क्रांतिकारियों का एक दल उसी दिसम्बर में जेलों से छूटकर आया था। यह दल अपने 'दादा' नेताओं से उसी प्रकार परेशान था जैसे कि हिंसप्रस के नवयुवक जयचंद्र जी और जे० एन० सान्याल से ऊबे हुए थे। परस्पर सम्पर्क हो जाने के कारण ये लोग हिंसप्रस के साथ काम करने को तैयार हो गये। हिंसप्रस को एक ऐसे आदमी की सख्त जरूरत थी, जो बम बनाना सिखा सके। कलकत्ता में भगतसिंह का यतीन्द्राथ दास से परिचय हो जाने पर यह समस्या हल हो गई।

केन्द्रीय समिति की दिल्ली बैठक में हिंसप्रस का केन्द्रीय स्थान दिल्ली निश्चित किया गया था। बम बनाने की विद्या सिखाने वाला व्यक्ति मिल जाने पर भगतसिंह की इच्छा थी कि यह प्रयोग आगरा में ही किये जायें और सब प्रांतों का एक-एक प्रतिनिधि यह शिक्षा पा सके, भविष्य में बम बनाने वाले व्यक्ति दुर्लभ न रहें।

यतीन्द्रनाथ दास पूर्णतया सहयोग देने को तैयार थे। उन्होंने सुझाया जोड़े के दिन हैं, आगरा में शायद बर्फ पर्याप्त मात्रा में न मिल सके। ये लोग बम में पलीता 'गनकाटन' का लगाते थे। 'गनकाटन' बहुत जल्दी आग पकड़ लेती है। बुझी दियासलाई में यदि कुछ भी चमक शेष हो तो छुआते ही 'गनकाटन' फक् से जल जाएगी। अच्छी बनी 'गनकाटन' का फाया हथेली पर रख कर यदि जलाया जाए तो इतनी जल्दी जल कर समाप्त हो जाएगा कि हथेली पर निशान भी न बन पाएगा। 'गनकाटन' बनाने के लिए रासायनिक उपकरणों को बर्फ के बीच में रख कर कार्य करना पड़ता था।

यतीन्द्रनाथ दास के सुझाव पर यह तय हुआ कि कलकत्ता में बर्फ सभी महीनों में यथेष्ट मिल सकती है, इसलिए 'गनकाटन' कलकत्ता में ही बनाई जाए। 'पिक्रिफ एसिड' बनाने का सामान कलकत्ता से

खरीद कर आगरा पहुंचा दिया जाए, ताकि वहां दूसरे लोग भी मसाला बनाना सीख सकें। कलकत्ता में 'गनकाटन' बनाने का आयोजन कार्नवालिस स्ट्रीट में आर्यसमाज मन्दिर की सबसे ऊपर कोठरी में किया गया था। उस समय सीखने वालों में फणीन्द्र घोष, कमलनाथ तिवारी, विजय और भगतसिंह मौजूद थे। 'गनकाटन' कलकत्ता में बना ली गई और शेष सामान लेकर यह लोग दो-दो की टोलियों में आगरा के लिये चल दिये।

आगरा में केन्द्रीय आयोजन कुछ बड़े परिणाम में हो रहा था। लाहौर में साण्डर्स काण्ड सफलतापूर्वक कर लेने से बिना डकैती किए ही रुपया मिलने लगा था। आगरा में दो मकानों का प्रबन्ध किया गया था—एक 'हींग की मण्डी' में दूसरा 'नाई की मण्डी' में।

'नाई की मण्डी' में बम बनाने का तरीका सिखाने के लिये पंजाब से सुखदेव और राजपूताना से कुन्दनलाल को भी बुला लिया गया था। पहली बार तो सब सामान टूटा और कुछ सफलता भी न मिली, परन्तु दूसरे प्रयत्न में काफी सफलता मिल गई। असेम्बली बम-काण्ड में जो बम इस्तेमाल किये गये थे, उनका मसाला इसी समय आगरा में जनवरी 1929 में तैयार किया गया था।

ग्यारह

असेम्बली में बम फेंकने की बात भगतसिंह के मन में नेशनल कालेज में ही पक्की हो गई थी। उन्होंने नेशनल कालेज में फ्रांसीसी अराजकतावादी श्री वेलां का फ्रांस की असेम्बली में बम फेंकने के बाद दिया गया बयान पढ़ा था और तभी से उनके मन में यह बात बैठ गई थी कि हिन्दुस्तान में भी कुछ ऐसा ही होना चाहिए। कलकत्ता से जब भगतसिंह आगरा के लिये चले तो उनके मन में कार्य की पूरी रूपरेखा थी।

श्री चन्द्रशेखर आजाद के साथ ही दूसरे साथी भी इस कार्य के लिये सहमत हो गये थे। कारण यह था कि सब लोग ऐसा अनुभव कर रहे थे कि दल को इस समय कुछ ऐसा काम करना चाहिए, जो अपने मन में

अलग और अद्‌भुत हो। काकोरी केस के अभियुक्तों को जेल से छुड़ाने में जो असफलता मिली थी, उस पर भगतसिंह रो पड़े थे। दूसरे लोग भी क्षुब्ध थे। साइमन कमीशन पर बम न फेंक सकने की खिन्नता भी तकाजा कर रही थी। साण्डर्स-वध की सफलता ने उबाल उठा दिया था और आगरा में जो बम इन दिनों बने थे, वे अपने उपयोग के लिए जिद कर रहे थे। असेम्बली में बम फेंकना इन सब बातों का समाधान था। श्री जयदेव कपूर दिल्ली में उसका ताना-बाना बुन रहे थे। उन्होंने असेम्बली के सदस्यों से ऐसा विश्वसनीय सम्पर्क जोड़ दिया था कि जब वे चाहें, असेम्बली में जाने के लिए पास मिल जाए। इन पासों से भगतसिंह, आजाद और दूसरे कई साथी हो आए थे। सब परिस्थितियां और स्थान देख आए थे कि कहां से बम फेंका जाए और कहां जाकर वह गिरे। नक्शा अब पूरी तरह तैयार था।

अब तीन प्रश्न विचारणीय थे। पहला यह कि असेम्बली में बम फेंकने कौन जाए, दूसरा यह कि बम फेंकने के बाद गिरफ्तार हुआ जाए या भाग आया जाए और तीसरा यह कि बम कब फेंका जाए ?

व्यूह-रचना के पण्डित श्री चन्द्रशेखर आजाद इस बात पर दृढ़ थे कि बम फेंककर भाग आया जाए। असेम्बली में जाकर और सब रास्तों को देखने के बाद वह समझ गए थे कि बम फेंककर भाग आया जा सकता है। उनकी योजना थी कि बाहर मोटर रखेंगे और बम फेंकने वालों को उड़ा ले आयेंगे। मोटर की व्यवस्था भी सम्भव थी। पर भगतसिंह के मन में बेलां का नक्शा था। वे तो गुप्त आंदोलन को जनता का आंदोलन बनाने के लिए दृढ़ थे। इसके लिए उनका कहना था कि भागना ठीक नहीं है। वहीं गिरफ्तार हुआ जाए और मुकदमे के जरिये जनता को दल के विचारों से अवगत कराया जाए, क्योंकि जो बातें ऐसे नहीं कही जा सकतीं, उन्हें अदालत में खुले आम कहा जा सकता है और वे बातें खबरों के रूप में अखबारों में छप कर जनता तक पहुच सकती हैं। असेम्बली में बम फेंकने की योजना भगतसिंह की थी और यह सब जानते थे कि बम फेंकने भी वही जायेंगे। इसलिए उनकी बात को महत्त्व मिल रहा था। श्री विजयकुमार सिन्हा के समर्थन से यह महत्त्व और

भी बढ़ गया। बाद में दो आदमियों के जाने की बात तय हुई और भगतसिंह के साथ जयदेव कपूर और राजगुरु के नामों की चर्चा हुई।

यह बातचीत ही हो रही थी कि शानदार समाचार मिला—होली के दिन सेक्रेट्रिएट के सचिवों और असेम्बली के सरकार परस्त सदस्यों की दावत में वायसराय ने आना स्वीकार कर लिया है। समाचार मिलते ही तुरन्त तय हो गया कि इस बीच वायसराय पर ही आक्रमण किया जाए। इस काम के लिए शिववर्मा, जयदेव कपूर और राजगुरु नियुक्त किये गये।

वायसराय की सवारी के आगे-आगे सदा एक पायलेट मोटर साइकिल पर चलता है। इससे इस सवारी के प्रति लोग सावधान हो जाते हैं। वायसराय की मोटर को पहचानना भी कठिन नहीं था, उस पर ताज का चिह्न बना रहता है। यह सब होने पर भी चलती मोटर पर बम सफलता से तभी मारा जा सकता था, जबकि मोटर सामने आ जाने के कुछ क्षण पहले ही हाथ तैयार हो जायें। मोटर के आने के रास्ते पर पहले राजगुरु संकेत करने के लिए खड़े थे। उनसे कुछ दूर आगे जयदेव कपूर और उनसे बीस कदम आगे शिववर्मा दो-दो बम लेकर तैनात थे।

यदि जयदेव का बम चूक जाता तो शिव वर्मा फेंकते, इतने में जयदेव दूसरा बम लेकर बढ़ आते। जयदेव का बम सफल होने पर भी शिव वर्मा को अपने बम से रही-सही कसर पूरा कर देने का आदेश था। इस बात का खास ख्याल रखा गया था कि भूल से वायसराय की जगह किसी और पर बम न फेंक दिया जाए। इसलिए तय था कि राजगुरु पायलेट के पीछे आने वाली मोटर में, जिस पर ताज का चिह्न बना रहता है, वायसराय को पहचान कर संकेत कर देगा। दोनों ही के पास भरे हुए पिस्तौल भी थे। यदि दो बम मोटर में फेंकने से भी वायसराय बच जाते तो उस पर गोली चलाई जाती। उन्हें आदेश था कि आक्रमण करने के बाद वे गिरफ्तार करने वालों से लड़ते हुए वहीं समाप्त हो जायें।

पायलेट दिखाई देते ही वर्मा और कपूर दोनों ही अपने बमों के घोड़े खींचने के लिए तैयार हो गये और राजगुरु की ओर देखा। राजगुरु ने

निश्चित संकेत नहीं किया। ये दोनों विस्मय से हांफते रह गये। जब मोटर इन लोगों के सामने से गुजरी तो इन लोगों ने भी देखा कि मोटर में ड्राइवर के सिवा कोई भी मर्द नहीं था, तीन अंग्रेज महिलाएं बैठी हुई थीं।

यह बहुत अच्छा हुआ कि राजगुरु को संकेत के लिए दूर खडा कर दिया गया था, शिव वर्मा और कपूर मोटर का ताज पहचानते ही उस पर आक्रमण कर देते और हिंसप्रस के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास करने का अवसर लोगों को मिल जाता। ताज वाली मोट के पीछे और भी मोटरें थीं। इनमें भी वायसराय दिखाई नहीं दिया। बाद में पता लगा कि वायसराय साहब मछली का शिकार खेलने के लिये गये हुए थे और वहां से किसी दूसरे ही रास्ते से पार्टी में पहुंचे थे। इसके बाद फिर सारा ध्यान असेम्बली पर केन्द्रित हो गया। संयोग की बात अवसर भी अच्छा मिल गया।

केन्द्रीय असेम्बली में दो बिल पेश थे। एक पब्लिक सेफ्टी बिल (जन सुरक्षा बिल)। और दूसरा ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल (औद्योगिक विवाद बिल)। पहले का भीतरी मकसद देश में उठते आंदोलन को कुचलना था और दूसरे का मजदूरों को हड़ताल के अधिकार से वंचित रखना। भगतसिंह का बेहद चौकन्ना और राजनैतिक प्रश्नों पर सदा जागरूक ध्यान इस बात पर गया था कि केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेसी सदस्य कुछ दूसरे प्रगतिशील सदस्यों के साथ मिलकर इन कानूनों को पास नहीं होने देंगे। उस हालत में अंग्रेजी सरकार उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेगी और वायसराय इन्हें अपने विशेषाधिकार से पास कर देंगे।

उन्होंने पार्टी की मीटिंग में प्रस्ताव रखा कि जब वायसराय की इन बिलों को पास करने की घोषणा असेम्बली में हो, उसी समय बम फेंका जाए और अपने उद्देश्य स्पष्ट करने वाले पर्चे भी। सवाल उठा, बम कौन फेंके ? इस प्रश्न पर मतभेद था। प्रस्ताव भगतसिंह का था। वे मुकदमे को सर्वोत्तम रूप से लड़ सकते थे और पार्टी के नाम और लक्ष्य को जनता तक पहुंचा सकते थे। पर दल के कई सदस्यों की राय में दल की उन्नति और संगठन के लिए उनका और आजाद का बचा रहना बहुत

आवश्यक था। इसलिए वे भगतसिंह की आहुति देने को तैयार न थे। अब यह मान लिया गया था कि जो जायेगा, लौटेगा नहीं, वहीं गिरफ्तार होगा। इसलिए दल की केन्द्रीय समिति में भगतसिंह की जगह बटुकेश्वर दत्त और श्री विजय कुमार सिन्हा का नाम निश्चित हुआ।

केन्द्रीय समिति की इस बैठक में, जिसमें भगतसिंह को न भेज कर दूसरे दो लोगों को भेजने का निश्चय किया गया था, उस बैठक में सुखदेव न पहुंच सके थे। इस निश्चय की सूचना सुखदेव को भी तुरन्त दी गई। सूचना मिलते ही सुखदेव सीधे दिल्ली पहुंचे। भगतसिंह और सुखदेव में गहरी मित्रता थी। वे एक-दूसरे के लिए जान दे सकते थे। सुखदेव ने भगतसिंह को एकांत में ले जाकर बात की—"असेम्बली में बम फेंकने के लिए तुम्हें जाना था, दूसरे आदमियों को भेजने का निश्चय कैसे हो गया?"

भगतसिंह ने उत्तर दिया—"समिति का निर्णय है कि संगठन के भविष्य के लिए मुझे पीछे रहने की जरूरत है।"

सुखदेव ने अपने रूखे और कड़े ढंग से विरोध किया—"यह सब बकवास है। तुम्हारे व्यक्तिगत मित्र की हैसियत से देख रहा हूं कि तुम अपने पांव में कुल्हाड़ी मार रहे हो। यह देखकर मैं चुप नहीं रह सकता। जानते हो, तुम किस रास्ते पर चल रहे हो? तुम्हारा अहंकार बहुत बढ़ गया है। तुम अपने आपको दल का एकमात्र सहारा समझने लगे हो। तुम सान्याल दादा और जयचन्द बनते जा रहे हो। जानते हो, तुम्हारा क्या अन्त होगा? तुम एक रोज भाई परमानन्द बन जाओगे···।"

सुखदेव ने 1914-15 के लाहौर षड्यन्त्र के मुकदमे में हाईकोर्ट के जज का निर्णय बताया। जज ने भाई परमानन्द जी के लिए कहा था—"भाई परमानन्द इस क्रांतिकारी षड्यन्त्र का मस्तिष्क और सूत्रधार है, परन्तु व्यक्तिगत रूप से यह आदमी कायर है। वह संकट के काम में दूसरे को आगे झोंककर अपने प्राण बचाने की चेष्टा करता रहता है।"

सुखदेव ने कहा—"तुम सदा तो यों बच नहीं सकते। एक दिन तुम्हें भी अदालत के सामने आना ही पड़ेगा। उस दिन तुम्हारे लिए भी वैसा ही फैसला लिखा जाएगा, जैसा परमानन्द के लिए लिखा गया था।"

भगतसिंह के स्वभाव में ओज और उत्तेजना की कमी नहीं थी। वह चुपचाप सुखदेव की ओर देखते रहे। सुखदेव ने यहीं बस नहीं की। वह आगे भी कहते गये—"तुम कहना चाहते हो कि संगठन के हित के लिए तुम शहीद बनने के सम्मान को बलिदान कर रहे हो। ईमानदारी से अपने गिरेबान में झांककर देखो! तुम इस समय मौत का सामना नहीं करना चाहते, क्योंकि तुम्हें जिन्दगी इस समय बड़ी लुभावनी लग रही है। तुम उस औरत के स्नेह की आंच सेंकना चाहते हो और इसे दल के प्रति उत्तरदायित्व का बहाना बना रहे हो। तुम दूसरों से जो चाहे कहो, लेकिन मैं तुमसे और तुम मुझसे नहीं छिप सकते। तुम फिसल रहे हो।"

भगतसिंह बड़ी देर तक कुछ नहीं बोल सके। केवल सुखदेव की ओर घूरते रह गये, जैसे पिंजरे में बंद शेर चोट करने वाले की ओर देखता रह जाए, फिर बोले—"असेम्बली में बम फेंकने मैं ही जाऊंगा, केन्द्रीय समिति को मेरी बात माननी पड़ेगी। तुमने मेरा जो अपमान किया है, उसका उत्तर मैं नहीं दूंगा। इसके बाद तुम मुझसे कभी फिर बात न करना।"

सुखदेव ने रूखे ही स्वर में उत्तर दिया—"I HAVE DONE MY DUTY TOWARDS MY FRIEND" (मैंने अपने मित्र के प्रति अपना कर्तव्य पूरा किया है।) इस बातचीत के बाद दोनों अलग-अलग केन्द्रीय स्थान पर पहुंचे।

सुखदेव जब दिल्ली से लाहौर पहुंचे, उस समय भी उनकी आंखें सूजी हुई थीं। जान पड़ता था वे बहुत रोये है। वह किसी से बात नहीं कर पाते थे।

सात तारीख को दोपहर बाद सुखदेव ने भगवती भाई को ढूंढ़ कर कहा—"भगतसिंह से अन्तिम बार मिल लेना चाहते हो तो आज रात की गाड़ी से दिल्ली चलो!···भाभी को साथ ले लो।"

सुशीला दीदी उस समय छुट्टी लेकर लाहौर में भगवती भाई के यहां ही ठहरी हुई थीं। वे भी साथ गईं। शची लाहौर से कलकत्ते तक और लौटते समय दिल्ली की यात्रा में 'लम्बे चाचाजी' (भगतसिंह) से बहुत हिल गया था, इसलिए उसे भी साथ ले लिया गया। दिल्ली पहुंच कर

सुखदेव ने भगवती भाई, दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी को 'कुदशिया बाग' जाकर प्रतीक्षा करने को कहा और स्वय दूसरी ओर चले गये।

इन लोगों के कुछ समय प्रतीक्षा करने के बाद सुखदेव, भगतसिंह के साथ वहां आए। क्या होने वाला है ? इस विषय पर कोई चर्चा नहीं हुई। भगतसिंह को रसगुल्ले और संतरे बहुत पसंद थे। भाभी और सुशीला दीदी ये चीजें काफी मात्रा में लेती आई थीं। भगतसिंह को दोनों ने लाड़ से खूब खिलाया। साढ़े दस बजे के लगभग भगतसिंह विदा होकर चले गये। दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी इतना जानती थीं कि भगतसिंह को अंतिम विदाई दे रही हैं, परन्तु यह मालूम न था कि क्या होने जा रहा है। यह दल का अनुशासन था। दोनों ने भगतसिंह को रोली अक्षत और के टीके लगाये।

उस समय का एक कोमल चित्र श्री शिववर्मा ने वर्णित किया है—"दिल्ली में जब निश्चित रूप से फैसला हो गया कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ही असेम्बली में बम फेंकने जायेंगे तो मुझे और जयदेव को छोड कर सब साथियों को आदेश दिया गया कि वे दिल्ली से बाहर चले जायें। आजाद को झांसी जाना था। जब वे चलने लगे तो मैं स्टेशन तक उनके साथ हो लिया। रास्ते में बोले—"प्रभात ! (श्री शिववर्मा का पार्टी का नाम) अब कुछ ही दिनों में ये दोनों (उनका मतलब भगतसिंह और दत्त से था) देश की सम्पत्ति हो जायेंगे, तब हमारे पास उनकी याद ही रह जाएगी। तब तक के लिए मेहमान समझकर इनकी आराम-तकलीफ का ध्यान रखना। उस दिन रात-दिन वे भगतसिंह और दत्त की बातें करते रहे। वे भगतसिंह को इस काम के लिए भेजने के पक्ष में नहीं थे। भगतसिंह और सुखदेव की जिद् के सामने सिर झुकाकर ही उन्होंने फैसला स्वीकार किया था, लेकिन अन्दर से वे भगतसिंह को खोने के विचार से दुखी थे।

असेम्बली ने दोनों बिलों को फेल कर दिया था और वायसराय ने उन दोनो को विशेषाधिकार से पास कर दिया था। 8 अप्रैल, 1929 को वायसराय की घोषणा असेम्बली में सुनाई जाने वाली थी। निर्णय हुआ था कि उसी दिन बम फेंका जाए। जयदेव कपूर ने भगतसिंह और

बटुकेश्वर दत्त को असेम्बली में ले जाकर उस जगह बैठा दिया, जहां से बिना किसी सदस्य को नुकसान पहुंचाए बम फेंका जा सकता था। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त खाकी कमीज और नेकर पहने हुए थे। ज्योंही विशेषाधिकार से बिलों को वायसराय द्वारा पास होने की घोषणा होने को हुई, बटुकेश्वर दत्त और भगतसिंह अपने स्थान पर खड़े हो गये। फुर्ती के साथ अखबार में लिपटा हुआ बम भगतसिंह ने अपने हाथों मे ले लिया और सरकारी बेंचों के पीछे वाली खाली जगह पर लकड़ी की दीवार के पास फेंक दिया। धमाका इतना जोर से हुआ कि कानों के परदे हिल गये। दिल की धड़कनें बढ़ने लगीं। लोग सम्भल भी न पाये थे कि तभी एक सपाटे के साथ भगतसिंह ने दूसरा बम फेंका। उस धमाके ने लोगों के रहे-सहे होश भी गुम कर दिये। तभी उन्होंने छत की ओर हाथ उठा कर पिस्तौल से दो गोलियां छोड़ीं। साइमन साहब भी वायसराय की गैलरी में असेम्बली देख रहे थे। सबसे पहले वे भागे। सर चार्ज शुस्टर अपने डैस्क के नीचे छिप गये। कुछ सदस्य भाग कर बाहर आ गये। कुछ गैलरी में चले गये और कुछ बाथरूम में जा छिपे। बमों के फटने से जो नीला धुंआ पूरे हाल मे भर गया था, जब वह साफ हुआ तो हाल खाली था। सदस्यों में पण्डित मोतीलाल नेहरू, श्री मोहम्मद अली जिन्ना, पंडित मदनमोहन मालवीय अपनी जगह पर ज्यों के त्यों बैठे थे। दर्शक गैलरियां भी बिल्कुल खाली थीं। उनमें अपनी जगह पर दृढ़ता से खड़े थे—भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त। उन्होंने पूरे जोर से नारा लगाया—

"इंकलाब जिन्दाबाद! ···साम्राज्यवाद का नाश हो!"

उसी समय कुछ परचे बटुकेश्वर दत्त ने असेम्बली हाल में फेंके। उनमें अंग्रेजी में लिखा था—

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना

'बहरों को सुनाने के लिए ऊंची आवाज की ज़रूरत होती है। फ्रांस के अराजकतावादी शहीद वेलां के ऐसे ही अवसर पर कहे गये इन अमर शब्दों से क्या हम अपने काम का औचित्य सिद्ध कर सकते है।

शासन-सुधारों के नाम पर ब्रिटिश हुकूमत द्वारा पिछले दस वर्षों से हमारे देश का जो अपमान किया गया है, उस निन्दनीय कहानी को दोहराना नहीं चाहते। भारतीय राष्ट्र के नेताओं के साथ किये गये अपमानों का भी उल्लेख नहीं करना चाहते, जो इस असेम्बली द्वारा किये गये हैं, जिसे भारत का पार्लियामेंट कहा जाता है।

हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि कुछ लोग साइमन कमीशन के द्वारा सुधारों के नाम पर जो भी झूठे टुकड़े मिलने की सम्भावना है, उनकी आशा लगाए हुए हैं और मिलने वाली ताजी हड्डियों के बंटवारे के लिए झगड़ा तय कर रहे हैं। इसी समय सरकार भी भारतीय जनता पर दमनकारी कानून लादती जा रही है, जैसे कि 'पब्लिक सेफ्टी बिल', 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल'। इसी के साथ उसने 'प्रेस सिडीशय बिल' को असेम्बली के अगले अधिवेशन के लिए सुरक्षित रख लिया है। मजदूर नेता जो खुले रूप में अपना कार्य कर रहे थे, उनकी अंधाधुंध गिरफ्तारियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार का रुख क्या है।

इन बेहद उत्तेजित परिस्थितियों में 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' ने पूर्ण गम्भीरता के साथ अपना दायित्व अनुभव करते हुए अपनी सेना को यह कार्य करने का आदेश दिया है, जिससे कानून का यह अपमानजनक मजाक बन्द हो। विदेशी सरकार की शोषक नौकरशाही चाहे जो करे, परन्तु उसका नग्न रूप तो जनता के सामने लाना बहुत आवश्यक है।

जनता के चुने हुए प्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्र में लौट जायें और जनता को आने वाली क्रांति के लिए तैयार करें। सरकार को यह जान लेना चाहिए कि सेफ्टी बिल और ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल और लालाजी की नृशंस हत्या का असहाय भारतीय जनता की ओर से विरोध करते हुए हम इस पाठ पर जोर देना चाहते हैं, जिसे कि बहुत बार इतिहास ने दोहराया है कि व्यक्तियों की हत्या कर डालना आसान है, लेकिन तुम विचारों की हत्या नहीं कर सकते। बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गये, जबकि विचार जीवित रहे। फ्रांस के बूर्बां और रूस के जार समाप्त हो गये, जबकि क्रांतिकारी विजय की सफलता के साथ आगे बढ़ गये।

हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं । हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण शांति और स्वतन्त्रता का उपयोग करेगा । हम मानव-रक्त बहाने के लिये अपनी विवशता पर दुखी हैं, परन्तु क्रांति द्वारा मनुष्यों का बलिदान आवश्यक है ।
इन्कलाब जिन्दाबाद !

ह० बलराज
कमाण्डर-इन-चीफ

बम के धमाके से असेम्बली के सभी लोग और चौकसी के लिए तैनात पुलिस भी इतनी घबरा गई थी कि दर्शकों की गैलरी पूरी खाली हो जाने के बाद भी कुछ देर तक किसी ने भी भगतसिंह और दत्त की ओर जाने का साहस नहीं किया । पहली बात तो यह थी कि भगतसिंह और दत्त दर्शकों की भीड़ के साथ बाहर निकल कर जा सकते थे और उसके बाद भी निकलने का काफी समय था । पिस्तौल और बारह कारतूस अभी इन लोगों के पास मौजूद थे । इन पर चलाये गये मुकदमों में पुलिस के गवाहों के बयान के आधार पर जज ने अपने फैसले में यह भी कहा था कि यदि अभियुक्त चाहते तो उनके बचकर भाग जाने के लिये काफी अवसर था । यह तो पहले ही से निश्चित था कि उन्हें भाग कर बचना नहीं है, बल्कि अपनी बात कह सकने का अवसर पैदा करना है ।

भगतसिंह और दत्त के काफी देर तक गैलरी में निश्चिन्त खड़े रहने पर सार्जेण्ट टेरी ने आकर उनसे प्रश्न किया—"क्या यह तुम्हीं लोगों ने किया था ?'

भगतसिंह ने स्वीकार किया । गोली-भरा पिस्तौल अब भी उनके हाथ में था । वह चाहते तो उस गोरे सार्जेण्ट को वहीं ठण्डा कर देते, परन्तु हिंसप्रस की युद्ध-घोषणा अंग्रेज व्यक्तियों के विरुद्ध नहीं, बल्कि अंग्रेजी साम्राज्यशाही व्यवस्था के विरुद्ध थी । भगतसिंह उस समय के लिए निश्चिंत अपना काम कर चुके थे । अलबत्ता अगर सर शुस्टर डैस्क के नीचे न छिप जाते तो वह उन पर गोली अवश्य चलाते । सर शुस्टर पर गोली चलाने का कारण यह था कि वे असेम्बली में ब्रिटिश शासन व्यवस्था के मुख्य प्रतिनिधि के रूप में थे ।

भगतसिंह और दत्त के आत्म-समर्पण कर देने पर सशस्त्र पुलिस ने उन्हें बड़े साज-बाज से गिरफ्तार कर लिया और खूब चौकसी से उन्हें घेर कर अलग-अलग मोटरों में बैठा कर 'नई दिल्ली' के थाने की ओर ले गई।

जो पर्चे उन्होंने फेंके थे, वे उनके उद्देश्य की एक जोशीली घटना से हटाकर एक महान् राष्ट्रीय कार्यक्रम का रूप देते थे और इसलिए वे सब बटोर लिए गये और पूरा प्रयत्न किया गया कि उनकी गन्ध भी बाहर न जाए, पर दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संवाददाता ने अपनी होशियारी और फुर्ती से एक पर्चा उड़ा लिया और वह शाम के संस्करण में छप भी गया।

कोतवाली में जब उनसे अपना बयान देने को कहा तो उन्होंने जवाब दिया कि हमें पुलिस के सामने कोई बयान नहीं देना है। जो कुछ कहना है, हम अदालत के सामने ही कहेंगे। पुलिस ने उन्हें दिल्ली जेल भेज दिया। वहां से उन्होंने अपने पिता को यह पत्र लिखा—

दिल्ली जेल
24-4-1929

पूज्य पिताजी महाराज,

वन्दे मातरम्।

अर्ज है कि 22 अप्रैल को पुलिस की हवालात से दिल्ली जेल में मुन्तकिल (तब्दील) कर दिये गये थे और इस वक्त दिल्ली में ही हैं। मुकदमा 7 मई को जेल के अन्दर ही शुरू होगा। करीबन एक माह में सारा ड्रामा खत्म हो जाएगा। ज्यादा फिक्र करने की जरूरत नहीं है। मुझे मालूम हुआ कि आप यहां तशरीफ लाये थे और वकील वगैरह से बातचीत की थी और मुझसे मिलने की कोशिश भी की थी, मगर तब सब इन्तजाम न हो सका। कपड़े मुझे परसों मिले। मुलाकात आप जिस दिन तशरीफ लायें, हो सकेगी। वकील वगैरह की कोई खास जरूरत नहीं है। दो-एक आमूद पर थोड़ा-सा मशवरा लेना चाहता हूं मगर वह कोई खास अहमियत नहीं रखते। आप खामख्वाह ज्यादा तकलीफ न कीजिएगा। अगर आप

मिलने आयें तो अकेले ही आइयेगा, वाल्दा साहिब को साथ न लाइयेगा। ख्वामख्वाह वह रो देंगी और मुझे भी तकलीफ जरूर होगी। घर के सब हालात आपसे मिलने पर मालूम हो सकेंगे।

हां, अगर हो सके तो गीता रहस्य, नेपोलियन की मोटी सुआने उमरी (जीवन-चरित्र) जो आपको और कुतुब में मिल जाएगी। अंग्रेजी के कुछ आला नावल लेते आइयेगा। द्वारकादास लाइब्रेरी वालों से शायद कुछ नावल मिल सकें। खैर देख लीजिएगा। वाल्दा साहिब, भाभी साहिब, माताजी (दादीजी) और चाची साहिब के चरणों मे नमस्कार। रणवीरसिंह और कुलतारसिंह को नमस्ते। बापूजी (दादाजी) के चरणों मे नमस्कार अर्ज कर दीजिएगा। इस वक्त पुलिस हवालात और जेल मे हमारे साथ निहायत अच्छा सलूक हो रहा है। आप किसी किस्म की फिक्र न कीजिएगा। मुझे आपका एड्रस मालूम नहीं है, इसलिए इस पते (कांग्रेस दफ्तर) पर लिख रहा हूं।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

3 मई 1929 को सरदार किशनसिंह दिल्ली जेल में भगतसिंह से मिले। बैरिस्टर आसफअली भी उनके साथ थे। सरदार किशनसिंह पूरी ताकत और ढंग से मुकदमा लड़ने के पक्ष में थे, पर भगतसिंह बचाव की दृष्टि से मुकदमा लड़ने के विरूद्ध थे। श्री आसफअली से उन्होंने कुछ कानून पूछे और बातचीत समाप्त हो गई।

बारह

नाटक प्रारम्भ हो गया। 7 मई, 1929 को एडीशनल मजिस्ट्रेट मिस्टर पूल की अदालत में जेल में ही सुनवाई प्रारम्भ हुई। चुने हुए पत्र प्रतिनिधि और अभियुक्तों के निकट सम्बन्धियों और वकीलों के अतिरिक्त और किसी को अदालत में नही आने दिया गया। सरकार ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया, पर भगतसिंह ने कहा—"हम लोग अपना बयान सेशन जज

की अदालत में देंगे।" इसलिए केस भारतीय दण्ड विधान की धारा 3 के अधीन सेशन जज मिस्टर मिडलटन की अदालत में भेज दिया गया। दिल्ली जेल में 4 जून, 1929 को सुनवाई शुरू हुई। सरकारी गवाहों के बयान के बाद भगतसिंह ने अपने और बटुकेश्वर दत्त की ओर से 6 जून, 1929 को यह ऐतिहासिक बयान दिया—

"हमारे विरुद्ध गम्भीर अपराधों के आरोप लगाए गये हैं। हम इस समय अपने आचरण का स्पष्टीकरण करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में निम्न प्रश्न उठते हैं—

1. क्या सदन में बम फेंके गये थे ? यदि ऐसा हुआ तो इनका क्या कारण था ?

2. निम्न न्यायालय ने जिस प्रकार आरोप लगाया है, वह सही है अथवा नहीं ?

प्रथम प्रश्न के पूर्वार्द्ध के लिए स्वीकारात्मक है, परन्तु कुछ साथियों ने घटना का असत्य विवरण प्रस्तुत किया है, हम बम फेंकने का दायित्व स्वीकार करते हैं। अतः हम अपेक्षा करते हैं कि हमारे इस वक्तव्य का सही मूल्यांकन किया जा सकेगा। उदाहरणार्थ हम इस बात का संकेत करना चाहते हैं कि उन्होंने हममें से एक के हाथ से पिस्तौल छीन ली, जान-बूझकर बोला गया असत्य है। वस्तुतः जिस समय हमने आत्म-समर्पण किया, उस समय हम दोनों में से किसी के पास पिस्तौल नहीं थी। जिन साथियों ने यह कहा कि उन्होंने हमें बम फेंकते हुए देखा, उन्हें बे सिर-पैर का झूठ बोलने में कोई झिझक नहीं आई। हमें आशा है कि लोगों का ध्येय न्यायिक शुद्धता तथा निष्पक्षता की रक्षा करना है, वे इन तथ्यों से स्वयं निष्कर्ष निकालेंगे। साथ ही हम स्वीकार करते हैं कि अभी तक सरकारी पक्ष ने औचित्य की रक्षा की है तथा न्यायालय ने न्यायपूर्ण रवैया अपनाये रखा है।

प्रथम प्रश्न के उत्तरार्द्ध का उत्तर कुछ विस्तार से देना होगा, जिससे कि हम उन प्रयोजनों और परिस्थितियों को एक पूर्ण और खुले रूप मे स्पष्ट कर सकें, जिनके परिणामस्वरूप यह घटना हुई है, जिसने अब ऐतिहासिक स्वरूप ले लिया है। जेल मे हमारे साथ पुलिस

अधिकारियों ने भेंट की, उनमें से कुछ ने जब हमें यह बताया कि विचाराधीन घटना के पश्चात दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए लार्ड इरविन ने यह कहा कि हम लोगों ने बम फेंककर किसी व्यक्ति पर नहीं, वरन् स्वयं एक संविधान पर आक्रमण किया है। उस समय तुरन्त हमें यह आभास हुआ कि उस घटना के वास्तविक महत्व का सही मूल्यांकन नहीं किया गया है।

मानपात्र के प्रति हमारा प्रेम किसी से भी कम नहीं है। अतः किसी व्यक्ति के प्रति विद्वेष रखने का प्रश्न ही नहीं उठता, इसके विरुद्ध हमारी दृष्टि में मानव-जीवन इतना पवित्र है कि उस पवित्रता का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। छद्म समाजवादी दीवान चमनलाल ने हमें जघन्य आक्रमणकारी और देश के लिए अपमानकारक बताया है, साथ ही लाहौर के समाचार-पत्र 'ट्रिब्यून' तथा कुछ अन्य लोगों की यह धारणा भी असत्य है कि हम उन्मुक्त हैं।

हम नम्रतापूर्वक यह दावा करते है कि हमने इतिहास, अपने देश की परिस्थिति तथा मानवीय आकांक्षाओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है एवं पाखण्ड से घृणा करते हैं।

हमारा ध्येय उस संस्था के प्रति अपना व्यावहारिक प्रतिरोध प्रकट करना था, जिसने अपने आरम्भ से केवल अपनी निरुपयोगिता का ही नहीं, वरन् हानि पहुंचाने की दूरगामी शक्ति का भी नग्न प्रदर्शन किया है। हमने जितना अधिक चिन्तन किया है, हम उतने ही अधिक इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि इस संस्था (विधान मंडल) के अस्तित्व का प्रयोजन संसार के समक्ष भारतीय दीनता और असहायता का प्रदर्शन करना है तथा यह एक अनुत्तरदायी एवं स्वेच्छाचारी शासन की दमनकारी सत्ता की प्रतीक बन गई है।

जनता के प्रतिनिधियों की राष्ट्रीय मांग को बार-बार रद्दी की टोकरी मे फेंक दिया जा रहा है। सदन द्वारा पारित पवित्र प्रस्तावों को तथाकथित भारतीय ससद के फर्श पर निरादरपूर्वक पांवों तले कुचला जा रहा है। दमनकारी एवं स्वेच्छाचारी कानूनों के निवारण से सम्बन्धित प्रस्तावों की सबसे अधिक अपमानपूर्ण उपेक्षा की गई तथा निर्वाचित

प्रतिनिधियों ने जिन सरकारी कानूनों और प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया, उनको भी सरकार द्वारा स्वेच्छापूर्वक स्वीकृति प्रदान की जा रही है।

संक्षेप में ईमानदारी के साथ प्रयत्न करने पर भी हमारी समझ में यह नहीं आ रहा है कि ऐसी संस्था का अस्तित्व किस तरह न्यायसंगत माना जा सकता है, जिसकी शान-शौकत बनाये रखने के लिए भारत के करोड़ों लोगों के गाढ़े पसीने की कमाई व्यय की जाती है तथापि जो सारहीन, अभिन्न और शैतानी से भरा षड्यन्त्र मात्र बनकर रह गई है।

इसी प्रकार हम उन नेताओं की मनोवृत्ति के औचित्य को समझ नहीं पा रहे हैं, जो भारत की इस असहाय-पराधीनता के पूर्व नियोजित प्रदर्शन कर सार्वजनिक समय और धन नष्ट करते रहे है। हम इस विषय में तथा ट्रेड डिस्ट्यूट विधेयक प्रस्तुत किये जाने के समय श्रमिक नेताओं की व्यापक गिरफ्तारियों पर गम्भीरता से चिन्तन करते रहे हैं और जब इस विषय पर होने वाले विवाद की आंखों देखी जानकारी प्राप्त करने के लिए हम असेम्बली में आये तो हमारी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई कि भारत के करोडों मेहनतकशों को एक ऐसी संस्था से कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता, जो शोषकों की दम घोंटने वाली सत्ता और असहाय श्रमिकों की पराधीनता का एक खतरनाक स्मारक मात्र बनकर रह गई है।

अन्ततः समूचे देश के प्रतिनिधियों को इस प्रकार अपमानित किया गया है जिसे हम अमानवीय और बर्बर कहते हैं। साथ ही देश के करोड़ों भूखे और दरिद्र लोगों को उनके मौलिक अधिकारों तथा आर्थिक हित के एकमात्र साधन से वंचित कर दिया गया है।

कोई भी ऐसा व्यक्ति, जिसके हृदय में मूक और पराधीन श्रमिकों की दुर्दशा के प्रति हमारे जैसी सहानुभूति है, इस दृश्य को शान्तिपूर्वक नहीं देख सकता तथा जिसके हृदय में उन श्रमिकों के प्रति करुणा है, जिन्होंने उन शोषको के आर्थिक ढांचे के निर्माण के लिए मौन रह कर अपना जीवन-रक्त गिराया है, जिनकी यह सरकार अधिक समर्थक है। निर्दय, निर्दलन के फलस्वरूप उठने वाले आत्मा के क्रन्दन को दबा नहीं सकता। परिणामतः हमने गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद के भूतपूर्व

विधि सदस्य स्वर्गीय श्री सी० आर० दास के उन शब्दों से प्रेरणा ग्रहण की, जो उन्होंने अपने पुत्र के नाम एक पत्र में लिखे थे और जिनका तात्पर्य यह था कि इंग्लैण्ड को उनके दुःस्वप्न से जगाने के लिए बम आवश्यक है और हमने उन लोगों की ओर से प्रतिरोध प्रकट करने के लिए असेम्बली के फर्श पर बम फेंका, जिनके पास अपनी हृदय-विदारक कथा की अभिव्यक्ति का कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। हमारा एक-मात्र उद्देश्य यह था कि हम बहरों को अपनी आवाज सुनायें और समय की चेतावनी उन लोगों तक पहुंचायें जो उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। दूसरे लोग भी हमारी तरह ही सोच रहे है और यद्यपि भारतीय जाति ऊपर से एक शान्त समुद्र की भांति दिखाई दे रही है, तथापि भीतर ही भीतर एक भयंकर तूफान उफन रहा है। हमने उन लोगों को खतरे की चेतावनी दी है, जो सामने आने वाली गम्भीर परिस्थितियों की चिन्ता किये बिना सरपट दौड़े जा रहे हैं। हमने उस काल्पनिक अहिंसा की समाप्ति की घोषणा की है, जिसकी निरुपयोगिता के बारे में नई पीढ़ी के मन में किसी प्रकार का सन्देह नहीं बचा है। हमने ईमानदारी, पूर्ण सद्भावना तथा मानव-जाति के प्रति अपने प्रेम के कारण उन भयंकर खतरों के प्रति चेतावनी देने के लिए यह मार्ग चुना है, जिनका पूर्वाभास हमें भी देश के करोड़ों लोगों की भांति स्पष्ट रूप से हुआ है।

हमने पिछले पैरों में काल्पनिक अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है, हम उनकी व्याख्या करना चाहते हैं। हमारी दृष्टि से बल-प्रयोग उस समय अन्यायपूर्ण होता है, जब वह आक्रमण-रीति से किया जाए और यह हमारी दृष्टि में हिंसा है, परन्तु जब शक्ति का उपयोग किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जाए तो वह नैतिक दृष्टि से न्यायसंगत हो जाता है। बल-प्रयोग का पूर्ण बहिष्कार कोरी काल्पनिक भ्राति है। इस देश में एक नया आंदोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसकी पूर्व-सूचना हम दे चुके हैं। यह आंदोलन गुरु गोविन्दसिंह और शिवाजी, कमालपाशा और रिजाखां, वाशिंगटन और गैरीबाल्डी तथा लाफयेते और लेनिन के कार्यों से प्रेरणा ग्रहण करता है।

हमें ऐसा लगा कि विदेशी सरकार और भारत के सार्वजनिक नेताओं

ने इस आंदोलन की ओर से आंखें मूंद ली हैं तथा उनके कानों में इसकी आवाज नहीं पड़ी है। अत: हमें यह कर्तव्य प्रतीत हुआ है कि हम ऐसे स्थानों पर चेतावनी दें, जहां हमारी आवाज अनसुनी न रह सके।

हमने अभी तक विचाराधीन घटना के पीछे निहित आयोजना की चर्चा की है। अब हम अपने प्रयोजनों की मर्यादा के बारे मे भी कुछ कहना चाहते हैं।

हमारे मन में उन लोगों के प्रति कोई व्यक्तिगत द्वेष अथवा बैर नहीं था, जिनको इस घटना के दौरान मामूली चोटें आई हैं। इतना ही नहीं, असेम्बली में उपस्थित किसी भी व्यक्ति के प्रति हमारा व्यक्तिगत द्वेष नहीं था। हम तो यहां तक कह सकते हैं कि हम मानवीय जीवन को शब्दातीत रूप में पवित्र मानते हैं तथा किसी को चोट पहुंचाने के बजाय मानव-जाति की सेवा के लिए हम अपने प्राण देने को तत्पर है। हम साम्राज्यवादी सेनाओं के उन भड़ैत सैनिकों की भांति नहीं हैं, जो हत्या करने में रस लेते हैं। इसके विपरीत हम मानव-जीवन की रक्षा का प्रयत्न करेंगे। इसके बावजूद हम स्वीकार करते है कि हमने जान-बूझ कर असेम्बली भवन में बम फेंका। तथ्य स्वयं मुखर हैं तथा हमारा अनुरोध है कि हमारे प्रयोजनों को हमारे कार्य के परिणाम से ही आंका जाना चाहिए, न कि काल्पनिक परिस्थितियों और पूर्व-मान्यताओ के आधार पर। सरकारी विशेषज्ञ द्वारा दिये गये प्रमाणों के बावजूद सत्य यह है कि हमने असेम्बली-भवन पर जो बम फेंके, उनसे एक खाली बेंच को मामूली क्षति पहुंची और एक दर्जन से भी कम लोगों को मामूली-सी खरोंचें आईं। सरकार के वैज्ञानिकों ने इसे एक चमत्कार कहा है, परन्तु हमारी दृष्टि में यह एक पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया है। पहली बात तो यह है कि दो बम डैस्कों और बेंचों के बीच की खाली जगह में फटे, दूसरे यह कि जो लोग विस्फोट से केवल दो फुट की दूरी पर थे—जैसे श्री राऊ, श्री शंकरराव तथा श्री जार्ज शुस्टर, उन लोगों को या तो बिल्कुल चोट नहीं आई या केवल कुछ खरोचें आई। यदि बमों के भीतर कुछ पोटेशियम क्लोरेट और पिकरेट के प्रभावशाली तत्व भरे होते तो उन्होंने अवरोधों को खण्डित कर दिया होता तथा विस्फोट-स्थल से कई गज की

दूरी पर बैठे बहुत से लोग आहत हो गये होते एवं यदि उनके भीतर उससे भी अधिक विस्फोटक और प्रभावशाली तत्त्व भरे होते तो वे विधान-सभा के अधिकांश सदस्यों की जीवन-लीला को समाप्त कर सकते थे। हम यह भी कर सकते थे कि हम उन्हें सरकारी बाक्स में फेंकते, जहां महत्वपूर्ण लोग बैठे थे और आखिरकार हम यह भी कर सकते थे कि उस समय अध्यक्षदीर्घा में बैठे हुए सर जान साइमन पर चोट करते, जिसके दुर्भाग्यपूर्ण कमीशन से देश के सभी विवेकवान लोग घृणा करते हैं, परन्तु हमारा प्रयोजन यह सब नहीं था और बमों का जिस प्रयोजन के लिये निर्माण किया गया था, उन्होंने उससे अधिक काम नहीं किया। इसमें कोई चमत्कार नहीं था। हमने जान-बूझकर यह ध्येय निश्चित किया था कि सभी लोगों का जीवन सुरक्षित रहे।

इसके पश्चात हमने अपने कार्य के परिणामस्वरूप दण्ड प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से अपने आपको प्रस्तुत कर दिया और साम्राज्यवादी शोषकों को यह बता दिया कि वे व्यक्तियों को कुचल सकते है, विचारों की हत्या नहीं कर सकते। दो महत्वहीन इकाइयों को कुचल देने से राष्ट्र नही कुचला जा सकता। हम इस ऐतिहासिक निष्कर्ष पर बल देना चाहते हैं कि फ्रांस में लैटर्स डेकेन्टयैट तथा बैल्सटाइल्स घटनाओं से क्रांतिकारी आंदोलन को कुचला नहीं जा सका और फांसी की रस्सी साइबेरिया में बिछाई माडन रूसी क्रांति की ज्वाला को बुझा नहीं सकी। इसी प्रकार यह भी असम्भव है कि अध्यादेश और सुरक्षा विधेयक भारतीय स्वाधीनता की लपटो को बुझा सकें। षड्यंत्रों का भेद खोजने, उनकी जोरदार शब्दों में निन्दा करने तथा महत्तर आदर्शों का स्वप्न देखने वाले सभी नौजवानों को फांसी के तख्ते पर चढ़ा देने से क्रांति की गति अवरुद्ध नहीं की जा सकती। यदि हमारी इस चेतावनी की उपेक्षा नहीं गई, तो यह जीवन की हानि और व्यापक उत्पीड़न को रोकने में सहायक सिद्ध हो सकती है। यह चेतावनी देने का भार हमने स्वयं अपने कंधों पर लिया और कर्तव्य का पालन किया।"

निम्न न्यायालय में भगतसिंह से पूछा गया था कि 'क्रांति से वह क्या समझते हैं?' प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था—"क्रांति में घातक संघर्षों

का अनिवार्य स्थान नहीं है, न उसमें व्यक्तिगत रूप से प्रतिशोध लेने की ही गुजाइश है। क्रांति बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रांति से हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान अवस्था में परिवर्तन लाना चाहिए। उत्पादक और श्रमिक समाज के अत्यन्त आवश्यक तत्त्व हैं, तथापि शोषक लोग उन्हें श्रम के फलों और मौलिक अधिकारों से वंचित कर देते हैं। एक ओर सबके लिए अन्न उगाने वाले कृषक परिवार भूखों मर रहे हैं। सारी दुनिया के बाजारों मे कपड़ों की पूर्ति करने वाले बुनकर अपने और अपने बच्चों के शरीर को ढांपने के लिये पूरे वस्त्र प्राप्त नहीं कर पाते। भवन-निर्माण, लोहारी और बढ़ईगीरी के काम में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण करके भी गन्दी बस्तियों में रहते और मर जाते है। दूसरी ओर पूजीपति, शोषित और समाज पर घुन की तरह जीने वाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। यह भयंकर विषमताएं और विकास अवसरों की कृत्रिम समानताएं समाज को अराजता की ओर ले जा रही है। यह परिस्थिति हमेशा नहीं रह सकती तथा यह स्पष्ट है कि वर्तमान समाज-व्यवस्था एक ज्वालामुखी के मुख पर बैठी हुई आनन्दमग्न हो रही है और शोषकों के अबोध बच्चो की भांति हम एक खतरनाक दरार के कगार पर खड़े है। यदि सभ्यता के ढांचे को समय रहते न बचाया गया तो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी, अत. क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस आवश्यकता को अनुभव करते हैं, उनका कर्तव्य है कि वे समाज को समाजवादी आधारों पर पुनर्गठित करें। जब तक यह नहीं होगा, एक और एक मनुष्य के द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा, जिसे साम्राज्यवाद कहा जा सकता है, तब तक उससे उत्पन्न होने वाली पीड़ाओं और अपमानों से मानव जाति के सार्वभौमिक शान्ति के युग का सूत्रपात करने के बारे में की जाने वाली समस्त चर्चायें कोरा पाखण्ड हैं। क्रांति से हमारा प्रयोजन अंततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है, जिसको इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पडे और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाए। इसका परिणाम यह होगा कि विश्व-संघ मानव-जाति को पूंजीवाद के

बन्धन तथा युद्ध से उत्पन्न होने वाली बर्बादी और मुसीबतों से बचा सकेगा।

हमारा आदर्श यह है और इन आदर्श से प्रेरणा ग्रहण करके हमने एक समुचित और काफी जोरदार चेतावनी दी है। यदि इसकी भी उपेक्षा कर दी जाती है तथा वर्तमान शासन-व्यवस्था नवोदित प्राकृतिक शक्तियों के मार्ग को अवरुद्ध करने का क्रम जारी रखती है तो एक भीषण संघर्ष उत्पन्न होना निश्चित है, जिसके परिणामस्वरूप समस्त बाधक तत्वों को उठाकर फेंक दिया जाएगा तथा सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य होगा, जिससे क्रांति के लक्ष्य की उपलब्धि की जा सके। क्रांति मानव-जाति का जन्म-जात अधिकार है। स्वतंत्रता सभी मनुष्यों का ऐसा जन्म-सिद्ध अधिकार है, जिसे किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा सकता। श्रमिक वर्ग समाज का वास्तविक आधार है। लोक प्रभुता की स्थापना श्रमिकों का अंतिम ध्येय है। इन आदर्शों तथा इस आस्था के लिए हम उन सब कष्टों का स्वागत करेंगे, जो हमें न्यायालय द्वारा दिये जायेंगे। इस वेदी पर हम अपना यौवन धूपबत्ती की तरह जलाने को सम्बद्ध हुए हैं। इतने महान् ध्येय के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं माना जा सकता। हम क्रांति के उत्कर्ष की संतोषपूर्वक प्रतीक्षा करेंगे।...'इन्कलाब जिन्दाबाद!'

इस वक्तव्य के बाद देशवासियों का ध्यान और भी गहरे रूप में भगतसिंह पर केन्द्रित हो गया। उनकी ओजस्वी भाषा और नवीन विचार-पद्धति ने सबका ध्यान आकृष्ट किया। एक और भी बात थी, जिसकी ओर सबका ध्यान गया। वह थी भगतसिंह की मस्ती और बचाव के प्रति निर्लिप्तता। 10 जून, 1929 को केस की सुनवाई समाप्त हो गई और 12 जून को अपने 41 पृष्ठ के फैसले में सेशन जज ने दोनों अभियुक्तों को आजीवन कारावास का दण्ड सुना दिया। इसके तुरन्त बाद भगतसिंह को मियांवाली जेल में और बटुकेश्वर दत्त को लाहौर सेन्ट्रल जेल में भेज दिया गया।

तेरह

असेम्बली बमकांड में बचाव का प्रयत्न बिल्कुल नहीं किया गया था, फिर भी हाई कोर्ट में सेशन जज के फैसले की अपील कर दी गई। यह सब कुछ योजनापूर्वक हो रहा था। उस योजना का सार था—गुप्त सशस्त्र प्रयत्नों को सार्वजनिक क्रांति आंदोलन का रूप देना और इस प्रकार उसे जनता के मानस से जोड़ना।

जस्टिस फोर्ड और जस्टिस एडीसन के सामने हाईकार्ट (लाहौर) में अपील की पेशी हुई। हाईकोर्ट में जिस तेजस्विता के साथ भगतसिंह ने अपना दूसरा बयान दिया, उस पर कोई भी कानून विशारद गर्व कर सकता है। यह बयान इस प्रकार है—

"माई लार्ड !"

हम न वकील हैं, न अंग्रेजी के विशेषज्ञ और न हमारे पास डिग्रियां ही हैं, इसलिए हमसे शानदार भाषणों की आशा न की जाए। हमारी प्रार्थना है कि हमारे बयान की भाषा-सम्बन्धी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए उसके वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयत्न किया जाए। दूसरे तमाम मुद्दों को अपने वकीलों पर छोड़ते हुए मैं एक मुद्दे पर विचार प्रकट करूंगा। यह मुद्दा इस मुकदमे में बहुत महत्वपूर्ण है। मुद्दा यह है कि हमारी नीयत क्या थी और हम किस हद तक अपराधी हैं।

यह बड़ा पेचीदा मामला है, इसलिये कोई भी व्यक्ति आपकी सेवा में विचारों की वह ऊंचाई प्रस्तुत नहीं कर सकता, जिसके प्रभाव में हम एक खास ढंग से सोचने और व्यवहार करने लगे थे। हम चाहते हैं कि इसे दृष्टि में रखते हुए ही हमारी नीयत और अपराध का अंदाजा लगाया जाए। प्रसिद्ध कानून विशारद सालोमन के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके अपराधी उद्देश्यों को जाने बिना उस समय तक सजा नहीं मिलनी चाहिये, जब तक वे कानून-विरोधी आचरण सिद्ध न हों।

सेशन जज की अदालत में हमने जो लिखित बयान दिया था, वह हमारे उद्देश्य की व्याख्या करता था और इस रूप में हमारी नीयत की व्याख्या करता था, लेकिन सेशन जज महोदय ने कलम की एक ही नोंक

से यह कह कर कि "आमतौर पर अपराधी को व्यवहार में लाने वाली बात कानून के कार्य को प्रभावित नही करती और इस देश में कानूनी व्याख्याओं में कभी-कभार उद्देश्य और नीयत की चर्चा होती है"—हमारी सब कोशिशें बेकार कर दीं।

माई लार्ड, इन परिस्थितियों में सुयोग्य सेशन जज के लिए उचित था कि या तो अपराध का अनुमान परिणाम से लगाते या हमारे बयान की मदद से मनोवैज्ञानिक पहल कर फैसला करते, पर उन्होंने इन दोनों में से एक भी काम न किया।

पहली बात यह है कि असेम्बली में हमने जो बम फेंके, उनसे किसी भी व्यक्ति को शारीरिक अथवा मानसिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टि से जो सजा हमें दी गई है, वह कठोरतम ही नहीं, बदला लेने की भावना वाली भी है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाए तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाए, उसके असली उद्देश्य का पता ही नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाए तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नही हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नजरों में न रखने पर ससार के बडे-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नजर आयेंगे। सरकारी कर वसूल करने वाले अधिकतर चोर जालसाज दिखाई देंगे और न्यायाधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लगेगा। इस तरह तो समाज-व्यवस्था और सभ्यता खून-खराबा, चोरी और जालसाजी बन कर रह जाएगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाए तो हुकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे ? उद्देश्य की उपेक्षा की जाए तो हर धर्म-प्रचार झूठ का प्रचारक दिखाई देगा और हर एक पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उसने करोड़ों भोले और अनजान लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को भुला दिया जाए तो हजरत ईसामसीह गड़बड़ करने वाले, शांति भंग करने वाले और विद्रोह का प्रचार करने वाले दिखाई देंगे और कानून के शब्दों में 'खतरनाक व्यक्तित्व' माने जायेंगे।

लेकिन हम उनकी पूजा करते है, उनका हमारे दिल मे बेहद आदर है, उनकी मूर्ति हमारे दिलों में आध्यात्मिकता का स्पंदन करती है। यह

क्यों ? यह इसलिए कि उनके प्रयत्नों का प्रेरक एक ऊंचे दरजे का उद्देश्य था। उस युग के शासकों ने उनके उद्देश्य को नहीं पहचाना, उन्होंने उनके बाहरी व्यवहार को ही देखा, लेकिन उस समय से लेकर इस समय तक उन्नीस शताब्दियां बीत चुकी हैं। क्या हमने तब से लेकर अब तक कोई तरक्की नहीं की ? क्या हम ऐसी गलतियां दोहरायेंगे ! अगर ऐसा हो तो इन्सानियत की कुर्बानियां, महान शहीदों के प्रयत्न बेकार रहे और आज भी हम उसी स्थान पर हैं, जहां आज से बीस शताब्दियां पहले थे।

कानूनी दृष्टि से उद्देश्य का प्रश्न खास महत्त्व रखता है। जनरल डायर का उदाहरण लीजिए, उन्होंने गोली चलाई और सैकड़ों निरपराध और शस्त्रहीन व्यक्तियों को मार डाला, लेकिन फौजी अदालत ने उन्हें गोली का निशाना बनाने के हुक्म की जगह लाखों रुपये इनाम दिये। एक और उदाहरण पर ध्यान दीजिए—श्री खड़गबहादुर सिंह ने जो एक नौजवान गोरखा है, कलकत्ता में एक अमीर मारवाड़ी को छुरे से मार डाला। यदि उद्देश्य को एक तरफ रख दिया जाए तो खड़गसिंह को मौत की सजा मिलनी चाहिए थी, लेकिन उसे कुछ वर्ष कैद की सजा दी गई और अवधि से बहुत पहले मुक्त कर दिया गया। क्या कानून में कोई दरार रखनी थी, जो उसे मौत की सजा न दी गई या उसके विरुद्ध हत्या का अभियोग सिद्ध नहीं हुआ ? उसने हमारी ही तरह अपना अपराध स्वीकार किया था, लेकिन उसका जीवन बच गया और वह स्वतंत्र है। मैं पूछता हूं, उसे फांसी की सजा क्यों न दी गई ? उसका कार्य नपा-तुला था। उसने पेचीदा ढंग की तैयारी की थी। उद्देश्य की दृष्टि से उसका कार्य हमारे (एक्शन) की दृष्टि से ज्यादा खतरनाक और संगीन था। उसे इसलिए बहुत नर्म सजा मिली, क्योंकि उसका मकसद नेक था। उसने समाज को एक ऐसी जोंक से छुटकारा दिलाया, जिसने कई एक सुन्दर लड़कियों का खून चूस लिया था। श्री खड़गसिंह को महज कानून की प्रतिष्ठा बचाए रखने के लिए कुछ वर्षों की सजा दी गई। यह सिद्धान्तों का विरोध है जो कि यह है—'कानून आदमियों के लिए है, आदमी कानून के लिए नहीं है !' इन दशाओं में क्या कारण है कि हमें वे

रियायतें न दी जायें, जो श्री खड़ग बहादुर सिंह को मिली थीं। क्योंकि उसे नर्म सजा देते समय उसका उद्देश्य दृष्टि में रखा गया था, अन्यथा कोई भी व्यक्ति जो दूसरे को कत्ल करता है, फांसी की सजा से नहीं बच सकता। क्या इसलिए हमें आम कानूनी अधिकार नहीं मिल रहा कि हमारा कार्य हुकूमत के विरुद्ध था या इसलिए कि इस कार्य का राजनैतिक महत्व है।

माई लार्ड, इन दशाओं में मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाए कि जो हुकूमत इन कमीनी हरकतों में आश्रय खोजती है, जो हुकूमत व्यक्ति के कुदरती अधिकार छीनती है, उसे जीवित रहने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। अगर वह कायम है तो अराजी तौर पर और हजारों बेगुना ों का खून उसकी गर्दन पर है। यदि कानून उद्देश्य नहीं देखता तो न्याय नहीं हो सकता और न ही स्थायी शांति स्थापित हो सकती है।

आटे में संखिया मिलाना जुर्म नहीं, बशर्ते कि इसका उद्देश्य चूहों को मारना हो, लेकिन यदि इससे किसी आदमी को मार दिया जाए, तो यह कत्ल का अपराध बन जाता है। लिहाजा ऐसे कानूनों पर जो युक्ति पर आधारित नहीं और न्याय के सिद्धांत के विरुद्ध हैं, उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे ही न्याय विरोधी कानूनों के प्रति बड़े-बड़े श्रेष्ठ बौद्धिक लोगों ने बगावत के कार्य किये है।

हमारे मुकदमे के तथ्य बिल्कुल सादा हैं। 8 अप्रैल, 1929 को हमने सेण्ट्रल असेम्बली में दो बम फेंके। उनके धमाकों से चन्द लोगों को खरोंचें आईं। चेम्बर में हंगामा हुआ, सैकड़ों दर्शक और सदस्य बाहर निकल आये। कुछ देर बाद खामोशी छा गई। मैं और साथी बी० के० दत्त खामोशी के साथ दर्शक गैलरी में बैठे रहे और हमने स्वयं अपने को प्रस्तुत किया कि हमें गिरफ्तार कर लिया जाए। हमें गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग लगाये और हत्या के अपराध में सजा दी गई, लेकिन बमों से चार-पांच आदमियों को मामूली-सा नुकसान पहुंचा और जिन्होंने यह अपराध किया, उन्होंने बिना किसी किस्म के हस्तक्षेप के अपने आपको गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया। सेशन जज ने स्वीकार किया कि यदि हम भागना चाहते तो भागने में सफल हो सकते थे। हमने अपना अपराध

स्वीकार किया और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये बयान दिये। हमें सजा का भय नहीं है। लेकिन हम नहीं चाहते कि हमें गलत तौर पर समझा जाए। हमारे बयान से कुछ पैराग्राफ काट दिये गये हैं। यह वास्तविक स्थिति की दृष्टि से हानिकारक है।

समग्र रूप से हमारे वक्तव्य के अध्याय से साफ प्रकट होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है, इस देश में काफी ऊंची आवाज में चेतावनी देने की जरूरत थी और हमने अपने विचार के अनुसार चेतावनी दी है। सम्भव है कि हम गलती पर हों, हमारा सोचने का ढंग जज महोदय के सोचने के ढंग से भिन्न हो, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हमें विचार प्रकट करने की स्वीकृति न दी जाए और गलत बातें हमारे साथ जोड़ी जायें।

'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के सम्बन्ध में हमने जो व्याख्या अपने बयान में दी है, उसे उड़ा दिया गया है। हालांकि यह हमारे उद्देश्य का खास भाग है। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' से हमारा वह उद्देश्य नहीं था जो आमतौर से गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी, जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इन्कलाब का अर्थ पूंजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अन्त करना है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया को समझे बिना किसी सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नहीं है। गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ-साफ अन्याय है।

इसकी चेतावनी देना बहुत आवश्यक था। बेचैनी रोज-रोज बढ़ रही है। यदि उचित इलाज न किया गया तो रोग खतरनाक रूप ले लेगा। कोई भी मानवीय शक्ति इसकी रोकथाम नहीं कर सकेगी। अब हमने इ। तूफान का रुख बदलने के लिए यह कार्यवाही की है। हम इतिहास के गम्भीर अध्येता हैं। हमारा विश्वास है कि यदि सत्ताधारी शक्तियां ठीक समय, पर सही कार्यवाही करतीं तो फ्रांस और रूस की खूनी क्रांति न बरस पड़ती। दुनिया की कई बड़ी-बड़ी हुकूमतें विचारों के तूफान को रोकते हुए खून-खराबे के वातावरण में डूब गईं, सत्ताधारी

लोग परिस्थितियों के प्रभाव को बदल सकते हैं। हम पहले चेतावनी देना चाहते थे और यदि हम कुछ व्यक्तियों की हत्या करने के इच्छुक होते तो हम अपने मुख्य उद्देश्य में असफल हो जाते।

माई लार्ड, इस नीयत और उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए हमने कार्य-वाही की और इस कार्यवाही के बयान हमारा समर्थन करते हैं। एक नुक्ता स्पष्ट करना आवश्यक है, यदि हमें बमो की ताकत के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं होता तो हम पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री केसरकर, श्री जयकर, श्री जिन्ना जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय व्यक्तियों की उपस्थिति में क्यों बम फेंकते ? हम नेताओं के जीवन को किस तरह खतरे में डाल सकते थे ? हम पागल तो नहीं हैं और अगर पागल होते तो हमें जेल में बन्द करने के बजाय पागलखाने में बन्द किया जाता। बम के सम्बन्ध में हमें निश्चित जानकारी थी। उसी के कारण ऐसा साहस किया। जिन बैंचों पर लोग बैठे थे, उन पर बम फेंकना कहीं आसान काम था, लेकिन खाली जगहों पर बम फेंकना निहायत मुश्किल काम था। अगर बम फेंकने वाले सही दिमाग के न होते या वे परेशान (असंतुलित) होते तो बम खाली जगह की बजाय बैंचों पर गिरते। मैं तो कहूंगा, खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हमने दिखाई, उसके लिए हमें इनाम मिलना चाहिए। इन हालातों में माई लार्ड, हम सोचते हैं, हमें ठीक तरह समझा नहीं गया। आपकी सेवाओं में हम सजाओं में कमी कराने नहीं आए, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने आए हैं। हम तो चाहते है कि न तो हमसे अनुचित व्यवहार किया जाए और न ही हमारे सम्बन्ध में अनुचित राय दी जाए। सजा का सवाल हमारे लिए गौण है।"

बयान महत्वपूर्ण था, महत्वपूर्ण आदमी का था, पर यह महत्वपूर्ण आदमी एक गुलाम देश का नागरिक था और उसकी बात एक गुलाम बात थी, इसलिए सत्ता के मद में अंधे लोगों ने उसे स्वीकार नहीं किया और सेशन जज के फैसले को बाहल रखते हुए 13 जनवरी, 1930 को भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को आजन्म कारावास का दण्ड सुना दिया गया।

चौदह

असेम्बली बमकाण्ड का जो मुकदमा दिल्ली में चला, उसमें भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को यूरोपियन क्लास में रखा गया था और उनके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया गया था। लेकिन भगतसिंह कभी अपने लिये नहीं जिये। वह अपने में एक पूरा समाज समेटे हुए थे। जब उन्हें असेम्बली बम-काण्ड में जेल जाना पड़ा और उनका फैसला हो गया तो जेल सुधार के लिए उन्होंने और बटुकेश्वर दत्त ने भूख-हड़ताल कर दी। उधर उनके अन्य साथी भी गिरफ्तार कर लिये गये थे और उन्हें विभिन्न जेलों में रखा गया था। उन्होंने 15 जून, 1929 को भूख-हड़ताल शुरू की थी।

17 जून, 1929 को भगतसिंह ने मियांवाली जेल से यह पत्र लिखा—

सेवा में,
इन्स्पेक्टर जनरल जेल,
पंजाब जेल्स, लाहौर।

प्रिय महोदय,

इस सचाई के बावजूद कि साण्डर्स शूटिंग केस में गिरफ्तार दूसरे नौजवानों के साथ ही मुझ पर भी मुकदमा चलेगा, मुझे दिल्ली से मियांवाली जेल बदल दिया गया है। उस केस की सुनवाई 26 जून, 1929 से शुरू होने वाली है। मैं यह समझने में सर्वथा असमर्थ रहा हूं कि मुझे यहां तबदील करने के पीछे क्या भावना काम कर रही है?

जो भी हो, न्याय की मांग है कि हर एक अभियुक्त (अण्डर ट्राइल) को वे सुविधायें मिलनी चाहिए, जिससे वह अपने मुकदमे की तैयारी कर सके और मुकदमा लड़ सके, लेकिन मैं यहां रहते कैसे अपना वकील नियुक्त कर सकता हूं, क्योंकि यहां रहते हुए मुझे अपने पिता या दूसरे रिश्तेदारों से सम्पर्क रखना कठिन है। यह स्थान काफी अलग-थलग है, रास्ता कठिन है और लाहौर से काफी दूर है।

मैं प्रार्थना करता हू कि आप मुझे तुरन्त लाहौर सेण्ट्रल जेल में बदलने का आदेश दें, जिससे कि मुझे अपना केस लड़ने की तैयारी करने का उचित अवसर मिले। आशा है शीघ्र ध्यान दिया जाएगा।

आपका—
भगतसिंह
आजन्म कैदी, मियांवाली जेल
17-6-1929

उनकी मांग कानूनी थी, इसलिए जून के अन्तिम सप्ताह मे उन्हें लाहौर सेण्ट्रल जेल मे बदल दिया गया। भूख-हड़ताल के कारण उस समय उनकी हालत ऐसी थी कि उन्हें कोठरी तक पहुचने के लिए स्ट्रेचर का प्रयोग करना पड़ा। 10 जुलाई, 1929 को लाहौर के मजिस्ट्रेट श्रीकृष्ण की अदालत में साण्डर्स-हत्या केस आरम्भिक कार्यवाही के लिए शुरू हो गया। उस समय भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को स्ट्रेचर पर अदालत मे लाया गया। इस दशा को देखकर पूरे देश में हाहाकार मच गया। उसी दिन बोस्टर्ल जेल के उन साथी अभियुक्तों ने भी उनकी सहानुभूति में अनशन आरम्भ करने की घोषणा कर दी। यतीन्द्रनाथ दास चार दिन बाद भूख हड़ताल में शामिल हुए।

14 जुलाई, 1929 को भगतसिंह ने भारत सरकार के होम-मेम्बर (गृह सदस्य) को जो पत्र भेजा, उसमें निम्नलिखित मांगें थीं—

1. राजनीतिक कैदी होने के नाते हमें अच्छा खाना दिया जाना चाहिए, इसलिए हमारे भोजन का स्तर यूरोपियन कैदियों जैसा होना चाहिए। हम उसी तरह की खुराक की मांग नही करते, बल्कि खुराक का स्तर वैसा चाहते हैं।

2. हमें मशक्कत के नाम पर जेलों मे सम्मानहीन काम करने के लिए बाध्य नही किया जाना चाहिए।

3. बिना किसी रोक-टोक के पूर्व-स्वीकृति (जिन्हें जेल-अधिकारी स्वीकृत कर लें) पुस्तकें और लिखने का सामान लेने की सुविधा मिलनी चाहिए।

4. कम-से-कम एक दैनिक-पत्र हर एक राजनीतिक कैदी को मिलना चाहिए।

5. हरेक जेल में राजनीतिक कैदियों का एक विशेष वार्ड होना चाहिए, जिसमें उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की सुविधा होनी चाहिए, जो यूरोपियन लोगों के लिए होती है और एक जेल में रहने वाले सभी राजनीतिक कैदी उस वार्ड में रहने चाहिए।

6. स्नान के लिए सुविधायें मिलनी चाहिए।

7. अच्छे कपड़े मिलने चाहिए।

8. यू० पी० जेल सुधार समिति कमेटी में श्री जगतनारायण और खान बहादुर हाफिज हिदायत हुसैन की यह सिफारिश कि राजनीतिक कैदियों के साथ अच्छी क्लास के कैदियों जैसा व्यवहार होना चाहिए, हम पर लागू होना चाहिए।

सरकार के लिए यह भूख-हड़ताल प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गई। भगतसिंह का वजन 30 जुलाई, 1929 तक लगभग 5 पौण्ड प्रति सप्ताह तक गिरता गया। बाद में वजन ठहर गया। भूख-हड़ताल आरम्भ करते समय उनका वजन 133 पौण्ड था।

2 सितम्बर, 1929 को, जब भूख-हड़ताल के सम्बन्ध में देश की जनता का मन पूरे उफान पर था, सरकार ने जेल-इन्क्वायरी कमेटी की स्थापना की।

10 जुलाई, 1929 को मुकदमा आरम्भ हुआ था। भूख-हड़ताल की स्थिति में भी अभियुक्तों को हथकड़ी लगाकर अदालत मे लाया जाता था। 17 जुलाई 1929 को भगतसिंह ने हथकड़ी लगाने का विरोध किया। हथकड़ी लगाने का तरीका यह था कि एक हाथ पुलिस कान्स्टेबिल का रहता था, एक क्रांतिकारी अभियुक्त का।

13 सितम्बर, 1929 को पूरा देश आंसुओं से भीग उठा। हर हृदय दर्द से कराह उठा। भगतसिंह दर्द से तड़प उठे। उनके मित्र यतीन्द्रनाथ दास भूख-हड़ताल में ही शहीद हो गए।

पत्रों में भूख-हड़ताल का तूफान उमड रहा था। यतीन्द्रनाथ के शहीद होने से अंग्रेजी सरकार परेशान थी और जनता उत्तेजित हो रही

थी। इस प्रकार सरकार और देश के नेता दोनों ही भूख-हड़ताल की समाप्ति चाहते थे। दोनों ही अपने-अपने ढंग पर भगतसिंह को भूख-हड़ताल तोड़ने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। तभी सरकार द्वारा नियुक्त जेल कमेटी ने अपनी सिफारिशें सरकार के पास भेज दीं। भगतसिंह आने वाली परिस्थियों को तुरन्त भांप लेते थे। उन्होंने समझ लिया कि उनकी मांगें काफी अंशों में मान ली जायेंगी। उन्होंने अपने साथियों से कहा—"बस, इस बार इतना ही काफी है। अब हमें देखना चाहिए कि सरकार इन सिफारिशों के बारे में क्या करती है।" और वे भूख-हड़ताल तोड़ने को तैयार हो गए।

जेल अधिकारियों को जैसे वरदान मिल गया। भगतसिंह ने कहा—"हम इस शर्त पर भूख-हड़ताल तोड़ने को तैयार हैं कि हम सबको एक साथ ऐसा करने का अवसर दिया जाए।" बात मान ली गई। सबके लिए फलों के रस के गिलास तैयार किए गए। भगतसिंह ने कहा कि वह तो दाल और फुलका ही खाकर भूख-हड़ताल समाप्त करेंगे। डॉक्टरों ने समझाया, इतने दिन भूखे रहने के बाद एकदम खाना ठीक नहीं, पर वे न माने। अन्त में जेल अधिकारियों को उनकी बात मानने को विवश होना पड़ा।

और 5 अक्तूबर, 1929 को भगतसिंह ने अपनी एक सौ चौदह दिन की ऐतिहासिक भूख-हड़ताल सामूहिक रूप से अपने साथियों के साथ दाल और फुलका खाकर भंग की।

पन्द्रह

लाहौर षड्यन्त्र केस के अभियुक्त जब स्पेशल मजिस्ट्रेट की अदालत में आकर खड़े हुए तो लगा, इतना बड़ा देश हिन्दुस्तान सचमुच एक है। भारत मां के निराले मतवाले सपूत सचमुच एक होकर मां की बेड़ियां तोड़ने के लिए कटिबद्ध हैं। भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त, सुखदेव, राजकुमार, विजयकुमार सिन्हा, जितेन्द्र सान्याल, जयदेव कपूर, आशाराम, महावीर

सिंह, कमलनाथ तिवारी, किशोरी लाल शिववर्मा, गयाप्रसाद, सुरेन्द्र पाण्डे, अजय घोष, कुन्दनलाल, देशराज और प्रेमदत्त---सभी तो सिर से कफन बांध कर मां को आजाद कराने निकले थे। आजादी के दिवाने---क्रांति के राजदूत।

जैसे अखाड़े में मस्त पहलवान आते हैं, उसी तरह क्रांति के ये दीवाने अदालत में आते थे। आते ही एक बार चारों ओर देखते, फिर नारा लगाते---इन्कलाब जिन्दाबाद। इसके बाद राष्ट्रीय गान आरम्भ होता---वन्दे मातरम्···। उसके बाद झूमकर गाते---

सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है !
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है !!
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां,
हम अभी से क्या बतायें क्या हमारे दिल में है।
ऐ शहीद मुल्कों मिल्लत, मैं तेरे ऊपर निसार,
अब मेरी हिम्मत की चर्चा गैर की महफिल में है,
सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है !

फिर नारा गूंज उठता---इन्कलाब जिन्दाबाद। मजिस्ट्रेट कृष्ण वर्मा काला मुंह किये बैठा रहता और मौत के ये दीवाने झूम-झूम कर गाते रहते।

सरकार के अत्याचारों से तंग आकर इस मुकदमे में सरकारी गवाहों की पूरी पलटन तैयार हो गई थी। सरकार चाहती थी कि गवाहों की गवाहियों से वह इन लोगो को जनता की निगाहों में सिरफिरा और खूनी साबित कर दे, लेकिन परिणाम उल्टा हो रहा था। भगतसिंह ने इस तरह की व्यूह रचना की थी कि सरकार उसमें फंसती जा रही थी और जनता का झुकाव भगतसिंह और उनके साथियों की ओर होता जा रहा था।

जब सरकारी गवाह फणीन्द्रनाथ घोष कठघरे में आकर दल के भेद खोलने लगे तो शिववर्मा ने इस सफाई से जिरह की कि उन्हें भरी अदालत में बम बनाने का फार्मूला और तरीका बताना पड़ गया। इस तरह नई पीढ़ी को बम बनाना आ गया।

श्रीमती सुभद्रा जोशी के शब्दों में उस समय का एक दृश्य प्रस्तुत है, "न्यायाधीश के कमरे में न्यायाधीश ज्यों ही कुर्सी पर आकर बैठते, वह राष्ट्रीय गीतों और नारों से गूंज उठता। चारों ओर सन्नाटा छा जाता, न्यायाधीश सिर झुकाए कुर्सी पर मौन बैठे रहते, वकील एकदम मौन हो, अपने स्थान से हिलते तक न थे। अर्दली, सिपाही और दूसरे कर्मचारी भी सिर झुकाए खड़े या बैठे रहते थे। अभियुक्तों के सम्बन्धियों पर एक विचित्र-सी गंभीरता छा जाती थी। भगतसिंह और उसके साथी अदालत में पूरी तरह से छा जाते थे। सारा कमरा ही बलिदान के रंग में रंग जाने का दृश्य उपस्थित करता था।"

सुश्री वीरेन्द्र सिन्धु ने लिखा है—यह अदालत उन दिनों लाहौर की सबसे दिलचस्प जगह थी। अदालत का मुख्य द्वार बिल्कुल सड़क पर था। कालेजों-स्कूलों के विद्यार्थी छुट्टी होते ही दौड़ कर वहां आ जाते थे और इस तरह अदालत के बाहर भी अच्छी-खासी भीड़ जुट जाती थी। भगतसिंह खूब जोर से बोलते थे कि आवाज बाहर तक पहुंचे। जब अभियुक्त भीतर के कमरे में गाते थे तो बाहर खड़े लोग गाने लगते थे। शहीदों के शहीद कवि श्री ओमप्रकाश की ये पंक्तियां उन दिनों घर-घर में गाई जाती थीं—

कभी वो दिन भी आयेगा कि आजाद हम होंगे,
ये अपनी ही जमीं होगी, यह अपना आसमां होगा!
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा!!

और इस तरह मुकदमे का नाटक चलता रहा। अचानक एक दिन मस्ती भरा यह वातावरण क्रोध के तूफान में बदल गया। मौत के ये दीवाने, क्रांति के ये अग्रदूत, जिनके होंठों पर हमेशा मुस्कान तैरा करती थी, क्रोध से थरथरा उठे।

गवाहों के कठघरे में जयगोपाल खड़ा था।

वही जयगोपाल, जिसने क्रांति के युद्ध में कन्धे से कन्धा मिला कर चलने की सौगन्ध खाई थी, जो साण्डर्स-वध में भगतसिंह का प्रमुख सहयोगी और मित्र था। वही जयगोपाल इस समय गवाहों के कटघरे में

खड़ा होकर अपने मित्रों के विरुद्ध गवाही देने आया था। खड़ा ही नहीं था वरन् खड़े होकर वह अपनी मूंछें ऐंठ रहा था और व्यंग्य कर रहा था।

यह स्थिति आजादी के मतवालों से बर्दाश्त नहीं हुई। क्रांतिकारियों में सबसे कम उम्र के थे प्रेमदत्त। उनका खून खौल उठा। उन्होंने अपना जूता खोला और जयगोपाल को खींच मारा। हाहाकार मच गया अदालत में। मजिस्ट्रेट ने तुरन्त अभियुक्तों को हथकड़ी लगाने का हुक्म दिया। भला ऐसा हो सकता था। इस पर एकदम हंगामा मच गया और अदालत की कार्यवाही उस दिन के लिए स्थगित करनी पड़ी। दूसरे दिन अभियुक्तों ने अदालत में आने से ही इन्कार कर दिया। पुलिस उन्हें जबर्दस्ती अदालत में लाने के लिए एकदम खूंखार पशु की तरह टूट पड़ी। उसकी इच्छा थी कि अभियुक्तों को जबर्दस्ती लारी में लाद ले, लेकिन वे लोग ऐसी मिट्टी के नहीं बने थे, जो इस तरह के बल प्रयोग के सामने झुक जाते। पूरी कशमकश और बल प्रयोग के बाद पुलिस केवल पांच अभियुक्तों को लारी में लादने में सफल हो पाई, लेकिन जब लारी बोस्टर्ल जेल पहुंची तो पांचों व्यक्ति इस तरह आपस में चिपट गये कि पुलिस उन्हें किसी भी तरह नीचे उतारने में सफल न हो पाई। अदालत की कार्यवाही उस दिन भी न हो सकी।

दूसरे दिन पुलिस अफसरों ने दावा किया कि अदालत पहुंचकर हथकड़ी खोल दी जाएंगी। अदालत पहुंचकर पुलिस अपने वादे से फिर गई और उसने हथकड़ी न खोली। लंच के समय भगतसिंह ने हंसकर कहा—"यारो, खाना तो खा लेने दो।" हथकड़ियां खोल दी गईं, पर लंच के बाद अभियुक्तों ने हथकड़ियां लगाने से इन्कार कर दिया। उसके बाद भारतीय अदालतों के इतिहास में ऐसा दृश्य प्रस्तुत हुआ कि सारी इन्सानियत आहि-आहि कर उठी। मजिस्ट्रेट बैठा रहा और उसकी आज्ञा पर पुलिस के सिपाहियों ने क्रूरतम पिटाई की। आठ पठान भगतसिंह पर लिपट गये, लेकिन इतने से भी संतोष न हुआ। पुलिस और पठान जेल उन्हें लेकर पहुंचे और वहां भी वे पीटे गये। वहां भी मुख्य निशाना भगतसिंह था। पुलिस ने भरपूर बल प्रयोग के बाद रिपोर्ट दी—"इन्हें मार डाला जा

सरकार के इस घृणित कर्म के विरुद्ध देश-विदेश में नफरत की आग फैल गई। समाचार-पत्रों ने सुर्खियां देकर इस समाचार को छापा। देश-विदेश में प्रदर्शन हुए। अन्त में सरकार झुकी और एक लम्बे अवरोध के बाद फिर मुकदमा चला। इसके बीच सर्वश्री सुभाष चन्द्र बोस, बाबा गुरुदित्तासिंह, के० एल० नरीयन, राजा कलाकार, रफी अहमद किदवई, मोहनलाल सक्सेना अदालत में आये। सरकार ने अभियुक्तों को फंसाने के लिये मुकदमा चलाया था और खुद उस चक्रव्यूह मे फंस गई।

तभी भगतसिंह ने एक और तुरप चाल चल दी। जेल-सुधार-कमेटी ने जेलों में व्यवहार के सम्बन्ध में जो सिफारिशें की थीं, उन्हें लागू करने के लिए पहले सरकार ने नवम्बर, 1929 का समय घोषित किया था। फिर इसे दिसम्बर के लिए स्थगित किया, लेकिन जनवरी, 1930 बीत जाने पर भी कोई कार्यवाही न हुई। इस पर भगतसिंह ने 4 जनवरी, 1930 को एक सप्ताह का नोटिस देने के बाद फिर हड़ताल शुरू कर दी। सरकार ने घबराकर एक पत्र मे प्रकाशित करके नया आश्वासन दिया। भगतसिंह ने भूख-हड़ताल तोड़ दी। इसके बाद भी उन्हें कुछ शिकायतें थीं। भगतसिंह ने फिर अदालत जाना बन्द कर दिया। इस पर 'सिविल मिलेट्री गजट' नामक पत्र में एक वक्तव्य छपा कि अभियुक्तों ने अदालत का बहिष्कार कर दिया। इस पर 11 फरवरी, 1930 को भगतसिंह ने एक पत्र में अपनी और बी० के० दत्त की ओर से मजिस्ट्रेट को लिखा—

"दूसरे साथी अभियुक्त हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न और दूर-दूर के प्रांतों के रहने वाले है, इसलिए उनको अपने बंधुओं से मुलाकात की सुविधाएं मिलनी चाहिए। श्री बटुकेश्वर दत्त और कमलनाथ तिवारी ने कुमारी लज्जावती से मुलाकात की इच्छा प्रकट की थी, लेकिन उनको इस आधार पर मुलाकात करने की सुविधा नहीं दी गई कि वे न तो इन दोनों की रिश्तेदार हैं और न वकील ही। बाद में इन लोगों का मुख्तार-नामा प्राप्त कर लेने पर भी उन्हें मुलाकात की स्वीकृति न दी गई। इससे साफ प्रकट है कि अभियुक्तों को अपनी सफाई देने के लिए पूरी सुविधायें नही दी जा रही हैं। साथ ही क्रांतिकुमार, जो हमारी डिफेंस कमेटी के लिये बहुत उपयोगी काम कर रहे थे, उनको एक झूठा मुकदमा (चटनी

में रखकर पिस्तौल की गोली लाने का) बनाकर जेल में डाल दिया गया है। यही नहीं, जब झूठा मुकदमा उनके विरुद्ध न हो सका तो गुरुदासपुर में उनके विरुद्ध 124-ए में एक नया मुकदमा खड़ा कर दिया है।

मैं स्वयं पूरे समय के लिये वकील नहीं रख सकता, इसलिए मैं चाहता था कि मेरे आदमी अदालत में रहें, लेकिन बिना कोई कारण बताए उन्हें स्वीकृति न देकर लाला अमरदास को एडवोकेट की जगह दे दी गई है। इंसाफ के नाम पर खेले जाने वाले इस नाटक को हम हरगिज पसन्द नहीं करते, क्योंकि इससे हमें अपनी सफाई पेश करने के लिए कोई सुविधा या लाभ नहीं पहुंचता।

एक और बड़ी शिकायत अखबार न मिलने की है। हवालाती (अंडर-ट्राइल) कैदियों से दण्ड-प्राप्त कैदियों जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता। इनको रोजाना कम से कम एक अखबार जरूर मिलना चाहिए। अंग्रेजी न जानने वालों के लिए भी हम एक दैनिक चाहते हैं। इसलिए विरोध के तौर पर हम 'ट्रिब्यून' भी वापस कर रहे हैं। इन्हीं कारणों से हमने 29 जनवरी, 1930 को अदालत में न जाने की घोषणा कर दी थी। इन असुविधाओं के दूर होते ही हमें अदालत में आने में कोई आपत्ति न होगी।"

सोलह

भगतसिंह ने अपनी दुरदर्शिता और बुद्धिमानी से सरकार को नाकों चने चबा दिया था और अब वह किसी तरह इस मुकदमे से पीछा छुड़ाना चाहती थी। 12 सितम्बर, 1929 को अंग्रेज सरकार ने केन्द्रीय असेम्बली में एक बिल पेश किया, जिसका आशय यह था कि यदि अभियुक्त अपने को अदालत में आने के अयोग्य बना लें तो न्यायाधीश को अधिकार होगा कि वह उनकी अनुपस्थिति में काम जारी रखें। सरकार की चाल यह थी कि अदालत में दुर्व्यवहार करने पर अभियुक्त अदालत में जाना बंद कर देंगे और इस प्रकार मुकदमा जल्दी समाप्त हो जाएगा।

इस बिल को लेकर असेम्बली में हंगामा उठ पड़ा। प्रतिपक्षी दल ने इसका जमकर विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि 16 सितम्बर, 1929 को सरकार ने अपना मत लोकमत के लिए प्रसारित करना स्वीकार कर लिया। साथ ही सरकार ने यह भी कह दिया कि यदि आवश्यकता हुई तो वह अपने विशेषाधिकार प्रयोग करेगी।

1 मई, 1930 में गवर्नर जनरल लार्ड इरविन ने लाहौर षड्यन्त्र केस आर्डिनेंस के नाम से एक विशेष आदेश जारी किया। इसके अनुसार तीन जजों का एक स्पेशल ट्रिब्यूनल नियुक्त किया गया, जिसे यह अधिकार दिये गये कि अभियुक्तों की अनुपस्थिति में सफाई के वकीलों और सफाई गवाहों के उपस्थित हुए बिना और सरकारी गवाहों से जिरह के अभाव में भी यह मुकदमे का फैसला एकतरफा कर सकता है। वास्तव में मई, 1929 में श्री हैरीसन की अध्यक्षता में जलियांवाला बाग के अभियुक्तों का फैसला करने के लिए जो फौजी ट्रिब्यूनल बनाया गया था, इस ट्रिब्यूनल को उससे भी ज्यादा नादिरशाही अधिकार प्राप्त थे। दो बातों में जरूर दोनों समान थे। पहली यह कि उसमें भी दो अंग्रेज और एक मुसलमान जज थे और इसमें भी। साथ ही वह भी मई महीने में नवोदित हुआ था और यह भी।

नया ट्रिब्यूनल पंजाब हाईकोर्ट ने बनाया था और उसमें ये सदस्य थे—जस्टिस जे० कोल्डस्ट्रीम प्रेसीडेंट, जस्टिस आगा हैदर सदस्य और जस्टिस जी० सी० ह्विल्टन सदस्य।

भगतसिंह ने ट्रिब्यूनल का बहिष्कार करने का निश्चय किया और उपस्थित न होने की बात दोहराई। उन्होंने देखा था कि भारतीय जनता इस समय भयानक रूप से क्रोध में है। अगर उन्होंने और उनके साथियों ने अदालत का बहिष्कार किया और सरकार ने इन अभियुक्तों की अनुपस्थिति में एकतरफा फैसला कर दिया तो जनता क्रोध में पागल हो जाएगी और देश को स्वतंत्र करने के लिए बड़े से बड़ा कदम उठाने के लिए तैयार हो जाएगी—यही तो भगतसिंह चाहते थे। वह अपनी पूर्णाहुति देकर जनता को जगाना चाहते थे।

5 मई, 1930 को लाहौर षड्यन्त्र केस की कार्यवाही ट्रिब्यूनल के

सामने आरम्भ हुई। अभी तक मुकदमा उस अदालत में होता था, जो सेंट्रल जेल के साथ ही थी और जिसमें जाने को जेल के भीतर से ही एक छोटा-सा द्वार था। भगतसिंह और दत्त तो वहां थे ही, बोस्टर्ल जेल के अभियुक्त वहां ले आये जाते थे। अब अदालत मजिस्ट्रेट की नहीं, माननीय जजों की थी और उन्हें जेल के अन्दर बुलाना उनकी शान के विरुद्ध था। इसलिए पुंच हाउस में अदालत बना दी गई और वहीं अभियुक्तों को लाने की व्यवस्था की गई।

देश की आजादी के मतवाले, अपनी पूर्णाहुति देने को तत्पर इन नव-युवकों पर भला इस बात से क्या असर पड़ता ? वे उसी तरह झूमते हुए मस्त चाल से अदालत में जाते-आते यही नारा लगाते—'इन्कलाब जिन्दाबाद'—और संगीत उभरता—'सुजलाम सुफलाम्' या 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।' दर्शक ये सब देखकर स्तब्ध रह जाते। नीचे की अदालत में हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेट नारों और गानों के बीच शांत बैठा रहता था। ट्रिब्यूनल में पहले ही दिन अंग्रेज जजों ने नारों पर नाक-भौं चढ़ाई और सरकारी वकील से नारों का अंग्रेजी में अनुवाद कराकर उनका अर्थ जाना। इस वातावरण में वे काफी भड़के, पर संयत रहे।

सरकार को नीचे की अदालत से यह सबक मिल चुका था कि मुकदमे की कार्यवाही पत्रों में छाप कर जलसों में चर्चा का विषय बना कर उन लोगों को, जिन्हें वह डाकुओं और हत्यारों की तरह मार डालना चाहती है, शहीदों और राष्ट्र वीरों का रूप मिल रहा है, इसलिए अदालत की कार्यवाही के प्रकाशन पर उसने पाबंदी लगा दी थी—लेकिन भला इससे जनता के दिलों की भावनाओं पर पाबन्दी लग सकती थी ?

ट्रिब्यूनल में वही अठारह अभियुक्त उपस्थित थे, जो मजिस्ट्रेट की अदालत में थे। ट्रिब्यूनल ने एक-एक अभियुक्त से पूछा—"आप वकील के द्वारा अपना मामला पेश करना चाहें तो वह सरकार के खर्चे पर किया जाएगा।" सुखदेव, आशाराम, जयदेव, शिववर्मा और कमलनाथ तिवारी ने इन्कार कर दिया। किशोरीलाल, अजय घोष और प्रेमदत्त ने कहा—"सरदार किशनसिंह डिफेंस कमेटी से सलाह करके उत्तर देंगे।" गयाप्रसाद और जतीन्द्र नाथ दास सान्याल ने कोई उत्तर न दिया और बैठे रहे।

बटुकेश्वर दत्त और कुन्दनलाल ने कहा—"मैं इस अदालत में किसी प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार करता हूं।" सुरेन्द्र पाण्डेय, विजयकुमार सिन्हा और राजगुरु ने कहा, "मुझे कोई सहायता नहीं चाहिये।" महावीर सिंह का उत्तर था—"मैं इस अदालत की किसी कार्यवाही में हिस्सा नहीं लूंगा।"

जब अदालत में सभी असहयोग करने को तत्पर थे, भगतसिंह ने शांत, स्थिर स्वर में कहा—"मुझे एक वकील की जरूरत है, कानूनी सलाहकार के रूप में। न वे सरकारी गवाहों से जिरह करेंगे, न अदालत में बहस करेंगे। सिर्फ अदालत की कार्यवाही की चौकसी करते रहेंगे।" उन्होंने बैरिस्टर दुनीचन्द का नाम इस काम के लिए प्रस्तावित किया। ट्रिब्यूनल ने उनकी बात मान ली। राजगुरु ने नया अड़ंगा डाला। उन्होंने कहा, उन्हें अदालत की भाषा समझ में नहीं आती, इसलिए उन्हें मराठी दुभाषिया मिलना चाहिए। सरकारी वकील ने नाक-भौं सिकोड़ी, पर अदालत ने तुरन्त दुभाषिये की बात मान ली।

यह सब था, किन्तु ट्रिब्यूनल के अंग्रेज जस्टिस खासकर प्रेसीडेंट श्री कोल्डस्ट्रीम अभियुक्तों के नारों और गानों से परेशान थे। वह इसे तुरन्त बन्द करना चाहते थे। फिर भी वे संयत रहे और मुखबिर जयगोपाल का बयान चलता रहा।

अदालत बैठी तो भगतसिंह ने अपने मीठे और कूक-भरे स्वर में क्रांति कवि ओ३म् प्रकाश की ये पंक्ति गाईं—

"वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है,
सुना है आज मकतल में हमारा इम्तहां होगा।
इलाही वह भी दिन होगा, जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमां होगा।"

जब पहले छन्द का भाव प्रेसीडेंट कोल्डस्ट्रीम को बतलाया गया तो वह गुस्से में लाल हो गये। उन्होंने ऊपर के स्तर पर सलाह ली और अदालत आरम्भ होने के चार दिन बाद वे समय से पहले ही कुर्सी पर आ बैठे। ज्योंही अभियुक्त आये और उन्होंने नारे लगाये, जस्टिस कोल्डस्ट्रीम ने उन्हें बन्द करने का आदेश दिया। भला भगतसिंह और उनके साथी

ऐसा आदेश कब मानने वाले थे। वे और भी जोर से गाने लगे—

"अपनी किस्मत में अजल से ही सितम रक्खा था,
रंज रक्खा था, मुहिम रक्खी थी, गम रक्खा था,
किस को परवा थी और किसमें दम रक्खा था,
हमने जब वादि-ए-गुरबत में कदम रक्खा था,
दूर तक यादे-वतन आई थी समझाने को।"

जस्टिस कोल्डस्ट्रीम ने पुलिस को आदेश दिया कि वह इस गाने को बन्द करवाये। पुलिस अभियुक्तों के बीच कूद पड़ी और 12 मई, 1930 को अदालत का वही काला इतिहास फिर से दुहराया गया, जो स्पेशल मजिस्ट्रेट की अदालत में हुआ था। लात, घूंसों और डण्डों से अभियुक्तों की पिटाई आरम्भ की गई। इस घटना में अदालती इतिहास के संग्रहालयों में एक नया चेहरा उभरकर सामने आया। वह चेहरा था जस्टिस आगा हैदर का। वे कुर्सी से उठकर बाहर जाने को तैयार हुए, जिससे न्यायालय में हो रहे अन्यायपूर्ण कार्य को न देख सकें। वे उठ जाते तो ट्रिब्यूनल के मुंह पर ऐसी कालिख पुत जाती जो छुड़ाए न छूटती। इसलिए प्रेसीडेंट जस्टिस कोल्डस्ट्रीम ने उनसे व्यक्तिगत प्रार्थना की कि वे बैठे रहें। इस पर आगा हैदर बैठे तो रहे, पर उन्होंने अपना मुख अखबार से ढंक लिया—"कम-से-कम खुदा से मैं यह तो कह सकूंगा कि हां अन्याय तो हुआ था, पर मैंने उसे अपनी आंखों से नहीं देखा।"

जस्टिस कोल्डस्ट्रीम ने कार्यवाही में यह लिखा—"ओइंग टू डिसऑर्डरली कन्डक्ट आफ द एक्यूज्ड द केस एडजर्ड टु टुमारो। दि कोर्ट वाज क्लियर्ड एण्ड द एक्यूज्ड वर रिमूव्ड।" (अभियुक्तों के दुर्व्यवहार के कारण केस कल के लिए स्थगित कर दिया गया। अदालत खाली हो गई और अभियुक्त हटा दिए गये।)

—जे० कोल्डस्ट्रीम, जी० सी० हिल्टन

जस्टिस आगा हैदर ने इस आदेश पर हस्ताक्षर नहीं किये और अलग से अपना आदेश लिखा—"आई वाज नाट ए पार्टी डू द आर्डर आफ द रिमूवल आफ द एक्यूज्ड फ्राम द कोर्ट टू द जेल एण्ड आई वाज नाट रिस्पान्सिबल फार इट एनी वे। आई डिसएसोसिएट माई सेल्फ फ्राम

आल दैट टुक प्लेस टुडे इन कांसीक्वेन्स आफ दैट आर्डर !" (मैं अभियुक्तों को अदालत से जेल भेजने के आदेश का भागीदार नहीं था और न उन सबके लिए किसी भी तरह जिम्मेदार। मैं उस सबसे जो आज यहां हुआ, अपने को असम्बद्ध करता हूं।) —आगा हैदर

इस बात का लाभ भगतसिंह को पहुंचा। जो साथी अदालत का बहिष्कार करने को उनसे सहमत नहीं थे, वे तुरंत उनसे सहमत हो गये और 13 मई, 1930 को अदालत में जाने के बाद फिर नहीं गए। इस प्रकार लाहौर षड्यंत्र केस का चार-पांच दिन तो मुकदमा रहा फिर न्याय के नाम पर अच्छा-खासा मजाक बन गया, जिसमें एक ही पक्ष था, हालांकि देखने को एक ही पक्ष था, परन्तु जस्टिस आगा हैदर सरकारी गवाहों से जिरह करके उन क्रांति-वीरों का ही तो प्रतिनिधित्व कर रहे थे। वे इस मुकदमे में झूठे क्रांतिकारी मुकदमे बनाने के लिए अपने फैसलों में पुलिस को लताड़ चुके थे और अपने राष्ट्र-प्रेम और स्वतंत्र स्वभाव के लिए देश-भक्तों में ख्याति प्राप्त कर चुके थे।

स्वाभाविक था कि अंग्रेजी सरकार इससे चिढ़ती। उसने पुराने ट्रिब्यूनल को तोड़कर नया ट्रिब्यूनल बनाया, जस्टिस जी० सी० हिल्टन —अध्यक्ष, जस्टिस अब्दुल कादिर—सदस्य, जस्टिस जे० के० टैप—सदस्य।

वायसराय ने इस तरह एक साथ दो शिकार किये—एक तो जस्टिस आगा हैदर से पीछा छुड़ाया और दूसरे उनके साथ ही कोल्डस्ट्रीम को हटाकर अभियुक्तों से कहा, उनकी बात मान ली गई है, अब वे अदालत में आना आरम्भ करें। लेकिन भगतसिंह इस चाल को अच्छी तरह समझ गये। उन्होंने कहा—"जो लोग हमारे अपमान के लिये जिम्मेदार हैं, इनमें जस्टिस हिल्टन भी हैं। वे क्षमा-याचना करें तो हम अदालत में आयें।" अंग्रेजी सरकार की नाक पहले ही काफी कट चुकी थी, इसलिए वह और न झुकी और मुकदमे की इकतरफा कार्यवाही आरम्भ हो गई। यह कार्यवाही लगभग तीन महीने चलती रही। 26 अगस्त, 1930 को अदालत का काम पूरा हो गया, पर कागजी कार्यवाही तो उसे करनी ही थी। दूसरे दिन अभियुक्तों को संदेश भेजा गया कि आप अपने बचाव के

लिए स्वयं या वकील के द्वारा जो कहना चाहते हैं, कह सकते हैं या अपने गवाह पेश कर सकते हैं। अभियुक्तों में से कोई भी इस बात के लिए तैयार नहीं था।

इस इन्कार के साथ ही अभियुक्त ये भी समझ गए कि ट्रिब्यूनल अब अपना फैसला देने ही वाला है। भगतसिंह ने उस समय दो पत्र लिखे थे, जिनसे उस समय की परिस्थितियों का स्पष्ट पता लगता है—

सेण्ट्रल जेल, लाहौर,
16 सितम्बर, 1930

ब्रादर अजीज कुलबीर जी, सत श्री अकाल।

आपको मालूम ही होगा कि बमूजिब अहकाम अफसराना वाली मेरी मुलाकातें कम कर दी गई हैं। अन्दरूनी हालात फिलहाल मुलाकात न हो सकेगी और मेरा ख्याल है कि अनकरीब ही फैसला कर दिया जाएगा। इसके चंद रोज बाद किसी दूसरी जेल को चालान हो जाएगा। इसलिए किसी दिन जेल में आकर मेरी कुतुब व पारचात व दीगर अशिया ले जाना। मैं बर्तन, कपड़े, कुतुब दीगर कागजात जेल के डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट के दफ्तर में भेज दूंगा, आकर ले जाना। न मालूम मुझे बार-बार यह ख्याल क्यों आ रहा है कि इसी हफ्ता के अन्दर या ज्यादा से ज्यादा इसी माह में फैसला और चालान हो जाएगा। इन हालात में अब तो किसी दूसरी जेल में मुलाकात हो तो हो, यहां तो उम्मीद नहीं है।

वकील को भेज सको तो भेजना। मैं प्रिवी कौंसिल के सिलसिले में एक जरूरी बात दरयाफ्त करना चाहता हूं। वालिदा साहिबा को तसल्ली देना, घबरायें नहीं।

आपका भाई
—भगतसिंह

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
25 सितम्बर, 1930

ब्रादर अजीज कुलबीर सिंह जी, सत श्री अकाल।

मुझे यह मालूम करके कि एक दिन आप वाल्दा को साथ लेकर आए और मुलाकात की इजाजत न मिलने पर मायूस लौट गए, बड़ा

अफसोस हुआ। आखिर तुम्हें तो मालूम हो चुका था कि जेल वाले मुलाकात की इजाजत नहीं देते, फिर वाल्दा को क्यों साथ लाए ? मैं जानता हूं वो इस वक्त सख्त घबराई हुई हैं, मगर घबराहट और परेशानी का क्या फायदा ? नुकसान जरूरी है, क्योंकि जब से मालूम हुआ वे बहुत रो रही हैं, मुझे खुद भी बेचैनी हो रही है। घबराने की कोई बात नहीं और इससे कुछ हासिल भी नहीं। सब हौसला से हालात का मुकाबिला कर। आखिर दुनिया में दूसरे लोग भी तो हजारों मुसीबतों में फंसे हुए हैं और फिर अगर लगातार एक साल मुलाकातों पर तबीयत सैर नहीं हुई, तो दो-चार मजीद और मुलाकातों से भी तसल्ली न हो सकेगी। मेरा ख्याल है कि फैसला और चालान के बाद मुलाकातें खुल जायेंगी, लेकिन अगर फर्ज किया जाए कि फिर भी मुलाकात की इजाजत न मिले तो घबराने से क्या फायदा ?

तुम्हारा—
भगतसिंह

5 सितम्बर, 1930 की रात को जेल में ऐसा दृश्य प्रस्तुत हुआ जैसा कि जेल के इतिहास में कभी न हुआ होगा। उस रात अन्तिम डिनर हुआ। अभियुक्तों के साथ इस डिनर में जेल के कुछ अधिकारी भी शामिल हुए। सबने एक-दूसरे से विदा ली। अफसर आश्चर्य से इन मौत के दीवानों को देख रहे थे, जो जिन्दगी को फुटबाल की तरह उछालते चल रहे थे। डिनर क्या था, आनन्दपूर्ण समारोह था। सब हंस रहे थे, एक-दूसरे को छेड़ रहे थे, लतीफे-चुटकुले सुनाए जा रहे थे। अभियुक्त जेल के अधिकारियों के साथ एकदम आत्मियों जैसा व्यवहार कर रहे थे और जेल-अधिकारियों का दिल उनके प्रति आदर और श्रद्धा से भर गया था।

दूसरे दिन सुबह पता लगा कि जेल के चारों ओर सशस्त्र पुलिस का पहरा लगा दिया गया है और बहुत सावधानी बरती जा रही थी। 7 अक्तूबर, 1930 की सुबह ट्रिब्यूनल का एक विशेष संदेशवाहक जेल में आया और उसने अभियुक्तों को ट्रिब्यूनल का फैसला सुनाया। यह व्यवस्था इसलिए की गई थी, क्योंकि अभियुक्त जब मुकदमे के लिये ही अदालत में नही जाते थे तो फैसला सुनने क्यों जाते।

फैसला 68 पृष्ठ का था और उसमें अभियुक्तों को क्रमशः इस प्रकार सजा दी गई थी—भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी, कमलनाथ तिवारी, विजय कुमार सिन्हा, जयदेव कपूर, शिव वर्मा, गयाप्रसाद, किशोरीलाल और महावीर सिंह (बाद में काले पानी में अनशन के नवें दिन शहीद) को आजन्म काला पानी। कुन्दनलाल को सात साल और प्रेमदत्त को तीन साल की सजा। मास्टर आशाराम, अजय घोष, सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय, देशराज और जितेन्द्र सान्याल को रिहा कर दिया गया।

बहुत सावधानी रखी गई थी कि फैसले की खबर जनता में न पहुंचे, लेकिन हवा के झोंकों पर चढ़कर यह खबर घर-घर फैल गई। सरकार ने फैसला होते ही लाहौर में धारा 144 लगाकर जलसे-जुलूसों पर पाबन्दी लगा दी थी। पर बिना किसी ऐलान, पोस्टर के म्युनिसिपल ग्राउण्ड में बड़ी भारी सभा हुई। उसमें कड़ी सजा की, एकतरफा मुकदमा होने की और वायसराय के आर्डिनेंस की आलोचना हुई। प्रभावशाली पत्रों के विशेष अंक तुरन्त निकले, उनमें भगतसिंह और उनके साथियों के फोटो भी छपे थे। सरकार के गुप्तचर परेशान हो गए कि ये फोटो कब, कैसे, किसने लिए और पत्रों को कैसे मिले।

8 अक्टूबर, 1930 को लाहौर और देश की जनता जोश और उत्तेजना से पागल हो उठी। लाहौर में स्टूडेंट यूनियन के आह्वान पर हड़ताल हुई। अधिकाश स्कूल-कालेज अपने आप बन्द हो गए और जो स्वयं बन्द न हुए उन्हें धरना देकर बन्द कराया गया। बहुत से विद्यार्थी और सत्रह महिलाएं गिरफ्तार हुईं। डी० ए० वी० कालेज के एक प्रोफेसर और 80 विद्यार्थियों के समूह ने पुलिस पर धावा बोल दिया। कई जगह लाठी चार्ज हुए। उस शाम देश भर में जुलूस निकले, सभायें हुई और सरकार की भरपूर भर्त्सना की गई।

सितम्बर, 1930 के आरम्भ में ही यह साफ मालूम होने लगा था कि ट्रिब्यूनल सरकार के इशारों पर नाच रहा है और वह और चाहे कुछ न करे, पर भगतसिंह को अवश्यमेव फांसी देगा। सरदार किशनसिंह ने स्पेशल ट्रिब्यूनल द्वारा वायसराय के पास एक प्रार्थना-पत्र दिया, जो कानूनी दृष्टि से एक अद्भुत दाव था। इसमें कहा गया था कि जिस

दिन साण्डर्स का वध हुआ था, उस दिन भगतसिंह कलकत्ता में था। उन्होंने वहां से उसी दिन खद्दर भण्डार, परी महल लाहौर के मैनेजर श्री रामलाल को एक पत्र लिखा था, जो डाक विभाग द्वारा बाकायदा उनके पास पहुंचा। मैं गवाह के रूप में उनको पेश कर सकता हूं या अदालत गवाही कानून के द्वारा उनको बुला सकती है। सरकारी गवाहों से वह अधिक प्रतिष्ठित नागरिक हैं। इस स्थिति में यह उचित है कि भगतसिंह को सफाई का अवसर दिया जाए।

भगतसिंह को जेल में जब यह समाचार मिला तो वह बौखला उठे। वह अपने पिता कीभावना समझते थे कि सरदार किशनसिंह जन्म-जात क्रांतिकारी हैं, लेकिन उनका दृष्टिकोण यह है कि अपने को बचा कर दुश्मन पर चोट करना, जबकि भगतसिंह का उद्देश्य था अपने को जलाकर क्रांति का दावानल धधका देना।

उन्होंने तुरन्त अपने पिता को एक पत्र लिखा, जिसके कुछ मार्मिक अंश इस प्रकार हैं—

"मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आपने स्पेशल ट्रिब्यूनल को मेरे बचाव के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजा है। यह समाचार इतना दुःखदायी था कि मैं इसे शांत होकर सहन नहीं कर सकता।

"आपका बेटा होने के नाते मैं आपकी पैतृक भावनाओं एवं इच्छाओं का पूरा सम्मान करता हूं, परन्तु इसके साथ ही मैं समझता हूं कि आपको मेरे साथ परामर्श किये बिना मेरे विषय में कोई प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार न था।

"मुझे विश्वास है कि आपको यह बात स्मरण होगी कि आप आरम्भ से ही मुझे यह बात मना लेने के लिए प्रयत्न करते रहे हैं कि मैं अपना मुकदमा ससझदारी से लड़ूं एवं अपना बचाव ठीक रूप से उपस्थित करूं। यह बात आपकी जानकारी में है कि मैं सदैव इसका विरोध करता रहा हूं।

"मेरा यह दृष्टिकोण रहा है कि समस्त राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं को ऐसी दशा में अदालत की अवहेलना एवं उपेक्षा दिखानी चाहिए और उनको जो कठोर से कठोर दण्ड दिया जाए, वह उन्हें हसते-हसते सहन

करना चाहिए।

"मेरा जीवन इतना मूल्यवान नहीं है, जितना आप समझते हैं। कम से कम मेरे जीवन का इतना महत्व नहीं कि इसे सिद्धांतों की अमूल्य निधि का बलिदान करके बचाया जाए।

"पिताजी, मैं बड़ी चिन्ता अनुभव कर रहा हूं। मुझे डर है कि आप पर दोष लगाते या उससे भी अधिक आपके इस कार्य की निन्दा करते हुए मैं कहीं सभ्यता की परिधि को न लांघ जाऊं और मेरे शब्द अधिक कठोर न हो जायें। फिर भी मैं स्पष्ट शब्दों में इतनी बात अवश्य कहूंगा कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति मेरे प्रति इस प्रकार का बर्ताव करता तो मैं उसे देशद्रोही से कम न समझता, परन्तु आपकी परिस्थिति में मैं यह बात नहीं कह सकता।

"बस इतना ही कहूंगा कि यह एक कमजोरी थी, निम्नकोटि की मानसिक दुर्बलता। यह एक ऐसा समय था, जब हम सबकी परीक्षा हो रही थी। पिताजी, मैं कहना चाहता हूं कि आप इस परीक्षा में असफल रहे हैं। मैं जानता हूं कि आप उतने सच्चे देश-भक्त रहे हैं, जितना कोई भी व्यक्ति हो सकता है। मैं जानता हूं कि आपने अपना समस्त जीवन भारत की स्वतंत्रता के लिए न्यौछावर कर दिया है, परन्तु इस महत्त्वपूर्ण घड़ी पर आपने ऐसी दुर्बलता क्यों दिखाई, मैं यह बात समझ नहीं पाया।"

भगतसिंह की इच्छानुसार यह पत्र सरदार किशनसिंह ने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी के अनेक पत्रों में तुरन्त छपा दिया।

सत्रह

डिफेंस कमेटी अब ट्रिब्यूनल के फैसले के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील करने की तैयारी कर ही थी, पर भगतसिंह अपील के विरुद्ध थे। इस केस में न अभियुक्त उपस्थित हुए थे और न उनके वकील। सरकारी गवाहों पर न जिरह हुई थी, न बहस में सरकारी आरोपों का उत्तर दिया गया था। इस दृष्टि से केस कमजोर था और ससार-भर में इससे ब्रिटिश

न्याय का रंग फीका पड़ा था। भगतसिंह को डर था कि इस सबका यह असर हो सकता है कि प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीश यदि निष्पक्ष रहे तो ट्रिब्यूनल का फैसला खत्म हो जाए। यह न हो तो कम से कम उनकी फांसी ही रुक जाए तो उनके सब किये-कराये पर पानी फिर जाए। वह अपनी पूर्णाहुति देकर जनता को जगाना चाहते थे। अपनी काल-कोठरी में इसी विषय पर सलाह के लिए आए अपने साथ विजय कुमार सिन्हा से उन्होंने कहा था, "भाई, ऐसा न हो कि फांसी रुक जाये। हम मरकर ही क्रांति की सेवा कर सकते हैं।"

उनका दृष्टिकोण इस इस पत्र से भी स्पष्ट है, जो उन्होंने अपनी फांसी का हुक्म सुनने के बाद नवम्बर, 1930 में अपने प्रिय साथी श्री बटुकेश्वर दत्त को लिखा था। बटुकेश्वर दत्त उस समय मुलतान जेल में थे और वहां से सलेम (मद्रास) जेल भेजे जा रहे थे—

"मुझे दण्ड सुना दिया गया है और फांसी का आदेश हुआ है। इन कोठरियों में मेरे अतिरिक्त फांसी की प्रतीक्षा करने वाले बहुत से अपराधी हैं। ये लोग यही प्रार्थना कर रहे हैं कि किसी तरह फांसी टल जाए, परन्तु उनके बीच शायद मैं ही एक ऐसा आदमी हूं, जो बड़ी बेताबी से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं, जब मुझे अपने आदर्श के लिए फांसी के फन्दे पर झूलने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं इस खुशी के साथ फांसी के तख्ते पर चढ़कर दुनिया को दिखा दूंगा कि क्रांतिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से बलिदान कर सकते हैं।

"मुझे फांसी का दण्ड मिला है, किन्तु तुम्हें आजीवन कारावास का दण्ड मिला है। तुम जीवित रहोगे और तुम्हें जीवित रहकर यह दिखाना है कि क्रांतिकारी अपने आदर्शों के लिए केवल मर ही नहीं सकते, बल्कि जीवित रहकर मुसीबत का मुकाबला भी कर सकते हैं। मृत्यु सांसारिक कठिनाइयों से मुक्ति का साधन नहीं बननी चाहिए, बल्कि जो क्रांतिकारी संयोगवश फांसी के फन्दे से बच गए है, उन्हें जीवित रहकर दुनिया को यह दिखा देना चाहिए कि वे न केवल अपने आदर्शों के लिए फासी पर चढ़ सकते है, वरन् जेलों की अंधकारपूर्ण छोटी कोठरियों में घुल-घुलकर निकृष्टतम दरजे के अत्याचारों को भी सहन कर सकते हैं।"

यह सब होते हुए भी कुछ ऐसी बातें थीं, जो उन्हें अपील करने के लिए उकसा रही थीं। डिफेन्स कमेटी ने मुकदमे में खूब काम किया था और यह अपील करने को आतुर थी। पंडित मोतीलाल नेहरू शिमला में बीमार पड़े थे और वहीं से उन्होंने अनुरोध किया था कि अपील अवश्य की जाए, जिससे सभी क्रांतिकारियों की रिहाई का प्रयत्न करने का समय मिल सके। एडवोकेट श्री प्राणनाथ मेहता स्वयं जेल जाकर भगतसिंह से मिल आए थे और उन्हें अपील के लिए समझाया था और अब भगतसिंह का मन तेजी से अपील करने के बारे सोचने लगा था।

लेकिन उनके सोचने का दृष्टिकोण बिल्कुल अलग था। वह सोचते थे कि प्रिवी कौंसिल में अपील करने पर विश्व-भर में भारतीय क्रांति के आदर्शों को प्रचारित करने का अवसर मिलेगा। भारत में जो अत्याचार जेलों में राजनीतिक-कैदियों पर होते हैं, उनके बारे में दुनिया के तमाम देश जान पायेंगे, इससे कम-से-कम मानवीय सहानुभूति प्राप्त होगी।

स्वयं भगतसिंह के शब्दों में—"अपील का उद्देश्य यह हो कि अभी हमारी फांसी रुकी रहे और वह तब हो, जब कांग्रेस का समझौता सरकार से हो और वह अपने परिणामों से शानदार सिद्ध न हो, युवक वर्ग में इससे असंतोष फैल रहा हो। बस, उन्हीं घड़ियों में हमें फांसी लगे और इस प्रकार कांग्रेस की बागडोर उग्रवादियों के हाथ में चली जाए।"

अपील के सम्बन्ध में साथियों के साथ बात करते समय एक अद्भुत वाक्य सामने आया था—"फांसी तब हो, जब देश की जनता का जोश अपने पूरे उफान पर हो और उसका ध्यान पूरी तरह इसकी (फांसी की) ओर केन्द्रित हो।"

अपील के लिए उन्होंने सूत्र दिया—अपील का आधार यह हो—वायसराय का वह आर्डिनेंस, जिसके द्वारा ट्रिब्यूनल की स्थापना हुई गैर-कानूनी है, इसलिए उसके द्वारा दी गई सजाएं भी गैर-कानूनी हैं। इस सूत्र का साफ मतलब यह था कि इस रूप में अपील-पूर्तियां खारिज हो जायेंगी और फांसी को भी उसके सर्वोत्तम समय के लिए टाला जा सकेगा।

और फिर नवम्बर, 1930 में प्रिवी कौंसिल में अपील कर दी गई

दिसम्बर, 1930 की कड़कड़ाती-ठिठुरती रात।

रात के सन्नाटे में श्री शिववर्मा की कालकोठरी का दरवाजा खुला और उन्हें बाहर लाया गया। हर कैदी जानता था कि इसका अर्थ किसी दूसरी जेल में भेजा जाना है। जेलर इन लोगों के प्रति आदर रखते थे, इसलिए शिववर्मा को अपने साथियों से मिलने की सुविधा दे दी गई। शिववर्मा, भगतसिंह की कालकोठरी के सामने पहुंचे। बेड़ी की झनझनाहट से भगतसिंह की नींद टूटी, वह उठे और तेजी से जंगले के पास आए। उन्होंने अपनी भुजाएं जंगले से बाहर निकालीं और शिव वर्मा ने अपनी भुजाएं अन्दर डाल दीं। शरीरों के बीच लोहे की सलाखें थीं और बांहों ने दोनों को एक जगह भींच लिया था।

इस घड़ी में सुख भी था, दुःख भी। महान सुख, क्योंकि जीवन-मरण के दो साथी एक जगह आ मिले थे। दारुण दुःख, क्योंकि जीवन-मरण के दो साथी सदा के लिए बिछुड़ रहे थे। कभी न मिलने के लिए, दोनों एक-दूसरे के सामने खड़े थे। शिववर्मा ने हृदय को लाख संभालने की कोशिश की, लेकिन हाड़-मांस का बना दिल विद्रोह कर उठा और आंखें सावन-भादों बन गईं। भगतसिंह हंसकर बोले, "क्रान्तिकारी पार्टी में आते समय मैंने सोचा था कि अगर मैं 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा देश के कोने-कोने तक पहुंचा सका तो समझूंगा कि मेरे जीवन का मूल्य मुझे मिल गया, पर आज तो मैं फांसी की कोठरी में भी अपने उस नारे की गूंज नहीं सुन रहा हूं।" उन्होंने आलिंगन ढीला किया और शिववर्मा के दोनों कंधे पकड़ लिए और पूरी दृढ़ता से कहा, "मैं समझता हूं, इस छोटी-सी जिन्दगी का इससे अधिक मूल्य और हो भी क्या सकता है?"

शिववर्मा के भी हाथ ढीले हो गये। उन्होंने भगतसिंह के हाथ अपने हाथ में ले लिये। भगतसिंह ने उनका हाथ प्यार से दबाते हुए कहा, "मैं तो कुछ ही दिनों में सारे झंझटों से छुटकारा पा जाऊंगा, लेकिन तुम लोगों को लम्बा सफर पार करना पड़ेगा। मैं विश्वास करता हूं, तुम इस लम्बे अभियान में थककर रास्ते में नहीं बैठ जाओगे!" एक बार दोनों हाथ पूरे प्यार की गरमजोशी से मिले और फिर अलग हो गए—कभी न मिलने के लिए।

अठारह

25 फरवरी, 1931 को वायसराय ने गांधी 'कांग्रेस वर्किंग कमेटी' के सदस्य तथा कुछ अन्य प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को जेल से छोड़ दिया। उद्देश्य था, प्रथम गोलमेज कांफ्रेंस के निर्णय पर नेता लोग खुलकर आपस में बातें कर सकें। इससे जनता के मन में एक नई आशा जगी कि कांग्रेस और सरकार में कोई फैसला होने वाला है और दूसरी बात यह कि फैसले के परिणामस्वरूप भगतसिंह और उनके साथियों का जीवन बच जायेगा।

17 फरवरी, 1931 को गांधीजी वायसराय से पहली बार मिले और बातें चार घण्टे तक चलीं। गांधीजी एक 'मनुष्य की हैसियत से' (उन्हीं के शब्दों में) मिले थे, पर कांग्रेस कार्य-समिति ने उन्हें समझौते के पूर्ण अधिकार दे दिए थे।

भगतसिंह मौत के पास जाते हुए भी देश की राजनैतिक परिस्थितियों के प्रति पूरी तरह सजग एवं सचेत थे। उन्होंने गांधीजी के छूटने के ठीक आठवें दिन 2 फरवरी, 1931 को देश के युवकों के नाम एक महत्त्वपूर्ण संदेश लिखकर भेजा, जिसके महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार हैं—

"इस समय हमारा आंदोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों में से गुजर रहा है, एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज कांफ्रेंस ने हमारे शासन-विधान में परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बातें पेश की हैं और कांग्रेस के नेताओं को निमन्त्रण दिया है कि वे आकर शासन-विधान तैयार करने के काम में मदद दें। कांग्रेस के नेता इस हालत में आंदोलन स्थगित कर देने के लिए उद्यत दिखाई देते हैं। वे लोग आंदोलन स्थगित कर देने के हक में फैसला करेंगे या उसके खिलाफ, यह बात हमारे लिए महत्त्व नहीं रखती। यह बात निश्चित है कि वर्तमान आंदोलन किसी न किसी प्रकार के समझौते के रूप में होना लाजिमी है। यह बात दूसरी है कि समझौता जल्दी हो जाए या देर में हो।

"वस्तुतः समझौता कोई ऐसी हेय या निन्दनीय वस्तु नहीं है जैसा कि साधारणतया हम लोग समझते हैं, बल्कि राजनीतिक संग्रामों का समझौता

एक आवश्यक अंग है। कोई भी कौम, जो किसी अत्याचारी शासक के विरुद्ध खड़ी होती है, यह जरूरी है कि वह प्रारम्भ में असफल हो और अपनी जद्दोजहद के मध्यकाल में इस प्रकार के समझौते के जरिए कुछ राजनीतिक सुधार हासिल करती जाए, परन्तु वह अपनी चढ़ाई की आखिरी मंजिल तक पहुंचते-पहुंचते अपनी ताकतों को इतना संगठित और दृढ़ कर लेती है कि उसका दुश्मन पर आखिरी हमला जोरदार होता है कि शासक लोगों की ताकतें उसके उस वार के सामने चकनाचूर होकर गिर पड़ती हैं। ऐसा भी होता है कि उस वक्त उसे दुश्मन के साथ कोई समझौता कर लेना पड़े।

"जिस बात को मैं बताना चाहता हूं, वह यह है कि समझौता भी ऐसा हथियार है, जिसे राजनीतिक जद्दोजहद के बीच में कदम-कदम पर इस्तेमाल करना भी आवश्यक हो जाता है। यह इसलिए कि एक कठिन लड़ाई से थकी हुई कौम को थोड़ी देर के लिए आराम मिल सके। इन सारे समझौतों के बावजूद जिस चीज को हमें नहीं भूलना चाहिये, वह हमारा आदर्श है! जो हमेशा हमारे सामने रहना चाहिए।

"भारत की वर्तमान लड़ाई ज्यादातर मध्यम श्रेणी के लोगों के बल-बूते पर लड़ी जा रही है, जिसका लक्ष्य बहुत सीमित है। कांग्रेस दुकानदारों और पूंजीपतियों के जरिए इंग्लैण्ड पर अधिक दबाव डालकर कुछ अधिकार लेना नहीं चाहती है, परन्तु जहां तक देश के करोड़ों मजदूरों और किसानों का सम्बन्ध है, उनका उद्धार इतने से नहीं हो सकता। यदि देश को लड़ाई लड़नी हो तो मजदूरों, किसानों और सामान्य जनता को आगे लाना होगा, उन्हें लड़ाई के लिए संगठित करना होगा। नेता उन्हें आगे लाने के लिए अभी कुछ नही कर सके है। इन किसानों को विदेशी हुकूमत के जुए के साथ-साथ भूपतियों के जुए से भी उद्धार पाना है, परन्तु कांग्रेस का उद्देश्य यह नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं कि कांग्रेस के लोग पूर्ण क्रांति नहीं चाहते। मैं यह भी कहता हूं कि कांग्रेस का आंदोलन किसी न किसी समझौते या असफलता के रूप में खत्म हो जाएगा।

"इन सब अवस्थाओं पर विचार करके मैं इस परिणाम पर पहुंचा

हूं कि सबसे पहले हमें सारी अवस्थाओं का चित्र साफ तौर पर अपने सामने अंकित कर लेना चाहिए। मैं यह मानता हूं कि समझौते का अर्थ कभी आत्मसमर्पण या पराजय स्वीकार करना नहीं, किन्तु एक कदम आगे बढ़ना और फिर कुछ आराम करना है। साथ ही साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि समझौता इससे अधिक और कुछ नहीं है। वह अन्तिम लक्ष्य और हमारे लिए अन्तिम विश्राम का स्थान नहीं है।

"यह बात प्रसिद्ध है कि मैं आतंकवादी (टेरेरिस्ट) रहा हूं, परन्तु मैं आतंकवादी नहीं हूं। मैं एक क्रान्तिवादी (रिवाल्यूशनरी) हूं, जिसके कुछ निश्चित विचार, निश्चित आदर्श और एक लम्बा कार्यक्रम है। मुझे यह दोष दिया जाएगा (जैसा कि लोग रामप्रसाद बिस्मिल को भी देते थे) कि फांसी की काल कोठरी में पड़े रहने से मेरे विचार में कोई परिवर्तन आ गया है, परंतु ऐसी बात नहीं है। मेरे विचार अब भी वही हैं और मेरा लक्ष्य अब भी वही है, जो जेल से बाहर था।

"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हम बम और पिस्तौल से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। यह बात हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के इतिहास से आसानी से मालूम हो जाती है। केवल बम फेंकना न सिर्फ व्यर्थ है, बल्कि बहुत बार हानिकारक भी है। उनकी आवश्यकता किन्हीं खास अवस्थाओं में ही पड़ा करती है। हमारा मुख्य लक्ष्य मजदूरों और किसानों का संगठन होना चाहिए। सैनिक विभाग (दल का) युद्ध-सामग्री को किसी खास मौके के लिए केवल संग्रह करता रहे। यदि युवक इसी प्रकार प्रयत्न करते जायेंगे, तब एक साल में स्वराज्य तो प्राप्तनहीं होगा, किन्तु भारी कुर्बानी और त्याग की कठिन परीक्षा में से गुजरने के बाद वे अवश्य विजयी होंगे। इन्कलाब जिन्दाबाद !"

उन्नीस

3 मार्च, 1931 को भगतसिंह के साथ परिवार वाले अन्तिम बार मिले। उस दिन की मुलाकात में माता-पिता थे, दादाजी थे, चाची थीं और भाई थे। सबसे अधिक अधीर थे दादा सरदार अर्जुनसिंह, जिन्होंने

इस वंश में क्रांति का पौधा रोपा ।

वे भगतसिंह के पास एक बार आए और उन्होंने उनके सिर पर हाथ फेरा, जैसे भगतसिंह एक छोटे से बालक हों । उन्होंने कुछ कहने की बहुत कोशिश की, लेकिन दिल इतना भरा था कि बोल होंठ के बाहर आ ही न सके । पास खड़े रहना उनके लिए असंभव हो गया—वह दूर जा खड़े हुए । आंखों से बरसात होती रही ।

भगतसिंह ने अपनी मां से कहा—"बेबेजी, दादाजी अब ज्यादा दिन नहीं जिएंगे । आप बंगा जाकर इनके पास ही रहना !" सबसे उन्होंने अलग-अलग बात की, सबको धीरज दी, सांत्वना दी । अंत में बेबेजी को पास बुलाकर हंसते-हंसते पूरी मस्ती-भरी आवाज में कहा—"लाश लेने आप मत आना, कुलबीर को भेज देना । कहीं आप रो पड़ीं तो कहेंगे कि भगतसिंह की मां रो रही है ।" कहकर वे इतनी जोर से हंसे कि जेल के अधिकारी उन्हें फटी-फटी आंखों से देखते रह गये ।

बीस

और फिर आई 23 मार्च, 1931 की ऐसी भोर जब आकाश खून से रंगा हुआ था । भगतसिंह के 23 वर्ष, 5 महीने और 26 दिन बीत चुके थे और सत्ताइसवां दिन प्रारम्भ हो रहा था । एडवोकेट प्राणनाथ मेहता के हाथों उन्होंने लेनिन का जीवन-चरित्र मंगवाया था और पूरी तन्मयता के साथ उसे पढ़ रहे थे । मौत का दिन आ गया था । भगतसिंह एकदम निश्चित थे, लेकिन लाहौर सेण्ट्रल जेल में एक आदमी बहुत बेचैन था । वे थे—लाहौर सेण्ट्रल जेल के बड़े जेलर खान बहादुर मोहम्मद अकबर । उनका दिल बार-बार ऐंठ उठता । बेचैन आवाज उनके मुंह से निकली—"कौन जान सकता है कि मुझ पर इस समय क्या बीत रही है । आप नहीं जानते, भगतसिंह मेरे लिए क्या है···?"

भगतसिंह ने रसगुल्ले मंगा कर खाये और पूरे मस्त रहे, जैसे कोई बात ही न हो । सूरज पूरी ऊंचाई पर पहुंच चुका था और भगतसिंह भी

अपनी जिन्दगी के चरमोत्कर्ष क्षणों में थे। सब कैदी इस समय बाहर थे। असिस्टेंट जेलर ने सबसे अपनी-अपनी जगह बन्द हो जाने को कहा, पर यह बन्द होने का समय नहीं था। अभी तो पूरी दोपहरी भी न ढली थी। सब चौके। समझ में न आया···बात क्या है ? ऊहापोह की स्थिति में खड़े सोचने लगे, बन्द होना चाहिए या नहीं !

तभी बड़े जेलर मोहम्मद अकबर अकेले चौदह नम्बर की बैरक के सामने आकर खड़े हो गये। बेहद तनाव था, उनके दिल-दिमाग पर। उनके मन में जाने कैसा अन्तर्द्वन्द मचा हुआ था। उनके मुंह से आप ही आप निकला—"हां बन्द न हों, जो होगा मैं देख लूंगा।" इसी स्थिति में वे लौट गये।

सब कैदी अपनी-अपनी जगह पर बन्द हो गये। जो कभी नहीं हुआ था, वह आज हो रहा था। जो जेल शाम को बन्द होती थी, वह दोपहर में ही बन्द कर दी गई थी।

श्री वीरेन्द्र (सम्पादक 'प्रताप') के शब्दों में—"जिस दिन भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु को फांसी के तख्ते पर लटकाया गया, मै भी लाहौर की सेण्ट्रल जेल में बन्द था। फांसी से पहले एक ऐसी घटना हुई, जो मेरे दिल और दिमाग पर हमेशा के लिए अपना प्रभाव छोड़ गई कि सरदार भगतसिंह किस मजबूत इरादे के इंसान थे।"

लाहौर सेण्ट्रल जेल में उन दिनों चीफ वार्डर एक रिटायर्ड फौजी हवलदार सरदार चतरसिंह था। तीन बजे के लगभग उसे यह सूचना दी गई कि आज शाम को इन तीनों को फांसी दी जायेगी, इसलिये वह अपने हिस्से की व्यवस्था पूरी कर ले। चतरसिंह एक मधुर स्वभाव और ईश्वर-भक्त मनुष्य था। सुबह-शाम वह गुरुवाणी का पाठ किया करता था। उसे जब मालूम हुआ कि भगतसिंह की जिन्दगी के कुछ ही घण्टे बाकी हैं तो वह सरदार भगतसिंह के पास गया और कहने लगा—"बेटा, अब तो आखिरी वक्त आ पहुंचा है, मैं तुम्हारे बाप के बराबर हू···मेरी एक बात मान लो !"

सरदार भगतसिंह ने हंसकर कहा—"कहिए, क्या हुक्म है ?" सरदार चतरसिंह ने जवाब दिया—"मेरी सिर्फ एक दरख्वास्त है कि आप आखिरी

वक्त में तो वाहे गुरु का नाम ले लो और गुरुवाणी का पाठ कर लो। यह लो गुटका, तुम्हारे लिए लाया हूं।"

सरदार भगतसिंह जोर से हंस पड़े। तब कहा—"आपकी इच्छा पूरी करने में तो मुझे कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी, अगर कुछ समय पहले आप कहते। अब, जबकि आखिरी वक्त आ गया है, मैं परमात्मा को याद करूं तो वह कहेंगे कि यह बुजदिल है। तमाम उम्र तो इसने मुझे याद किया नहीं, अब मौत सामने नजर आने लगी है तो मुझे याद करने आ गया है। इसलिए बेहतर यह होगा कि मैंने जिस तरह पहले जिन्दगी गुजारी है उसी तरह मुझे इस दुनिया से जाने दीजिये। मुझ पर यह इल्जाम तो कई लोग लगायेंगे कि मैं नास्तिक था और मैंने परमात्मा में विश्वास नहीं किया, लेकिन यह तो कोई नहीं कहेगा कि भगतसिंह बुजदिल और बेईमान भी था और आखिरी वक्त मौत को सामने देख कर उसके पैर लड़खड़ाने लगे।"

वह लेनिन का जीवन-चरित्र पढ़ रहे थे। वह कुछ ही पन्ने पढ़ पाये थे कि उनकी कालकोठरी का दरवाजा खुला। जेल के अधिकारी अपनी चमकदार यूनीफार्म पहने खड़े थे—"सरदार जी, फांसी लगाने का हुक्म आ गया है, आप तैयार हो जायें।"

भगतसिंह के दाहिने हाथ में पुस्तक थी। उन्होंने पुस्तक पर से बिना आंखें उठाये बांया हाथ उन लोगों की ओर उठा दिया—"ठहरो, एक क्रांतिकारी दूसरे क्रांतिकारी से मिल रहा है।" आवाज में इतना रौब था कि जेल-अधिकारियों को फिर कुछ कहने का साहस न हुआ। कुछ पैराग्राफ पढ़कर भगतसिंह ने पुस्तक छत की ओर उछाल दी और उछलकर खड़े हो गये—"चलो!" कालकोठरी में कई चेहरे थे। इनमें जेल अधिकारियों के चेहरे थे, जिनमें किसी की जान लेने की शक्ति थी और एक कैदी का भी चेहरा था, जो मरने जा रहा था। सत्ताधारियों के चेहरे उदास थे, सत्ताहीन का चेहरा खुशी से दमक रहा था।

"हमारे हाथों में हथकड़ियां न लगाई जायें और हमारे चेहरों पर कण्टोप न ढके जायें!" भगतसिंह की यह बात मान ली गई। भगतसिंह ने बहुत भाव-विभोर होकर एक बार अपनी कोठरी को ध्यान से निहारा

और वे कोठरी से बाहर आ गये। सुखदेव और राजगुरु भी अपनी कोठरियों से आ गये थे। तीनों ने एक-दूसरे को देखा और हसकर एक-दूसरे को गले लगाया।

अब भगतसिंह बीच में थे, सुखदेव उनके बाएं और राजगुरु दाएं। भगतसिंह ने अपनी दायी भुजा राजगुरु की बायी भुजा में डाल ली और बायी भुजा सुखदेव की दायीं भुजा में। क्षण-भर तीनों रुके और तब भगतसिंह ने गाना आरम्भ किया—

"दिल से निकलेगी न मरकर वतन की उल्फत,
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आयेगी।"

पलक झपकते तीनों स्वर एक हो गये। इन सम्मिलित स्वरों में कंठों का माधुर्य था। तीनों झूमकर गा रहे थे। वातावरण में चारों ओर आंसू बरस रहे थे। लेकिन इनके चारों ओर मुस्कान छलक रही थी।

आगे-आगे कुछ वार्डर चले, अगल-बगल जेल-अधिकारी, पीछे कुछ और वार्डर और बीच में क्रांति के अमर दूत।

वार्डर ने आगे बढ़ कर फांसी का काला दरवाजा खोला। भीतर लाहौर का अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर नियमानुसार खड़ा था। वह इन तीनों को खुले देखकर जरा परेशान हुआ, पर मुहम्मद अकबर ने उन्हें आश्वस्त कर दिया। तभी भगतसिंह उनकी ओर मुखातिब हुए। उनकी आंखों में खुशी की चमक थी। आवाज में एक देवदूत जैसी गम्भीरता—"वेल मजिस्ट्रेट, यू आर फार्चुनेट, टु बी एवल टुडे सी हाऊ इंडियन रेवोल्युशनरीज कैन एम्ब्रेस डेथ विद प्लेजर फार दी सेक आफ देयर सुप्रीम आईडियल।" (मजिस्ट्रेट महोदय, आप भाग्यशाली हैं कि आज अपनी आंखों से यह देखने का अवसर पा रहे हैं कि भारत के क्रांतिकारी किस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक अपने सर्वोच्च आदर्श के लिये मृत्यु का आलिंगन कर सकते हैं।)

डिप्टी कमिश्नर भगतसिंह की आवाज की सच्चाई से पानी-पानी हो गया। अब भगतसिंह और उनके साथी फांसी के मंच की सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे। सचमुच इस मंच ने ऐसे पैर कभी न देखे थे, जिनमे कंपकंपी न थी, लड़खड़ाहट नहीं, वरन् उनमें इतनी दृढ़ता थी कि धरती कांप-

कांप जा रही थी, तीन फन्दे लटक रहे थे, तीनों वीर उसी क्रम से उनके नीचे खड़े हो गये—बीच में भगतसिंह, बाएं सुखदेव और दाए राजगुरु। तीनों एक साथ गरजे—

"इन्कलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यवाद मुरदाबाद !"

तीनों ने अपना-अपना फंदा पकड़ा और उसे चूमकर अपने ही हाथ से गले में डाल लिया। भगतसिंह ने पास खड़े जल्लाद से कहा—"कृपा कर इन फन्दों को आप ठीक कर ले।" जल्लाद ने अपनी जिंदगी में ऐसे स्वर नहीं सुने थे। वह एकदम थरथरा गया।

कांपते हाथों और डबडबायी आंखों से उसने फन्दे ठीक किये। नीचे आकर चर्खी घुमाई, तख्ता गिरा और तीनों वीर भारत माता को अर्पित हो गए। यह संध्या 7 बजकर 33 मिनट का समय था।

लेकिन क्या ये मरे हैं ? भारत के चप्पे-चप्पे में आज भी इनकी आत्मा डोल रही है और आने वाले वक्त में भी हमेशा डोलती रहेगी।

इक्कीस

अंग्रेजी सरकार अपनी शैतानी ताकत के सहारे जहां तक जा सकती थी, जा चुकी थी और भगतसिंह का राष्ट्रीय अभिमान से उभरा सिर झुकाने के लिए जो कुछ कर सकती थी, कर चुकी थी। फिर भी वह सिर झुका न था, टूटकर इतना उभर गया था कि एक विशाल राष्ट्र का महान सिर बन गया था। तब वह सरकार 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोंचे' की कहावत के अनुसार अपने आपसे लड़ने लगी थी। उसने फांसी दिए हुए भगतसिंह को एक बार फिर फांसी देने का इरादा बांधा और उनकी तथा उनके साथियों की लाशों को काट-काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। ये टुकड़े बोरियों में भरे गये, पर मरी हुई देहो के कटे हुए ये टुकड़े भी इतने ताकतवर थे कि उन्हें जेल के मुख्य द्वार से बाहर लाने की हिम्मत अंग्रेजी फौजी अफसरों को न हुई। वे इन बोरियों को पीछे के छोटे दरवाजे से अपने ट्रक तक ले गये और उन्हें ट्रक मे लादकर इस

तरह भागे, जैसे कोई चोर हड़बड़ाया हुआ भाग रहा हो। यही वह दरवाजा था, जिससे भगतसिंह और उनके साथी 'सरफरोशी की तमन्ना' का गीत गाते हुए अदालत में आया करते थे।

लाहौर सेण्ट्रल जेल में जब यह सब हो रहा था, मोरी गेट के बाहर हजारों आदमी एक जलसे में बैठे भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह का भाषण सुन रहे थे। वहीं फांसी हो जाने की खबर मिली, लोग भड़क उठे। सरदारजी ने उन्हें रोककर स्वयं जेल की ओर कदम बढ़ाये। रोकने पर भी काफी लोग उनके पीछे गये, पर अब वहां क्या रखा था। ट्रक तेजी से कसूर पहुंचा और पहले से की हुई व्यवस्था के अनुसार वहां से एक सिख ग्रंथी और एक हिन्दू पंडित को लेकर फिरोजपुर के पास सतलुज के किनारे जा पहुंचा। ट्रक से लाशों के बोरे उतरे और मिट्टी के तेल के डिब्बे भी। लाशें जलने लगीं। वह ऊजड़ क्षेत्र रोशनी से चमक उठा। ग्रथी और पंडित दूर खड़े स्तब्ध भाव से यह सब देख रहे थे।

तेज आंधी की तरह खबर लाहौर से फिरोजपुर पहुंच गई। यह भी कि लाशों का ट्रक फिरोजपुर की ओर गया है। खबर पाते ही फिरोजपुर के हजारों लोग मशालें लिए इधर-उधर चल पड़े। वे उस तेज रोशनी की ओर बढ़े। फौजी लोग रोशनी को अपनी ओर आते देख घबराये। उन्होंने बेलचों के सहारे लाशों के अधजले टुकड़े सतलुज में फेंक दिये और इधर-उधर की रेत से जगह को ढांपकर अपना ट्रक ले आये। दूसरे दिन प्रातःकाल लोगों ने जमीन की गर्मी से उस जगह को खोज लिया और खून से सने पत्थर और लाशों के टुकड़े उठा लिये।

उसी दिन लोगों ने सुबह-ही-सुबह लाहौर में सरकारी पोस्टर चिपके हुए देखे कि 'सिख ग्रंथी और हिन्दू पडित के द्वारा भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु का अंतिम संस्कार कर दिया।' इस तरह अंग्रेजी सरकार ने अपने ही बनाये तमाम कानून का उल्लंघन करते हुए भगतसिंह का नामो-निशान मिटा दिया, पर हुआ यह कि देश के हर निवासी का हृदय एक मंदिर बन गया और उनकी प्रतिमा हमेशा-हमेशा के लिए उनमें प्रतिष्ठित हो गई।

देश का कोई नगर नहीं बचा, जहां जुलूस नहीं निकले, जलसे नहीं

हुए और देश का कोई गांव ऐसा नहीं बचा, जहां भगतसिंह का नारा—'इन्कलाब जिन्दाबाद' नहीं गूंजा। अपने बाप का बेटा भगतसिंह मर गया था, पर अपने राष्ट्र का वीर-पुत्र भगतसिंह जी उठा था। भगतसिंह की मरण साधना सफल हो गई थी। क्योंकि उनकी शहादत पर देश की जनता शोक-विह्वल हो क्रोध से उफन उठी थी।

सरदार भगतसिंह के इस चमत्कारी और जादू भरे प्रभाव से सरकार परेशान हो गई थी। हर दिल में उनका नाम था, तो हर मकान और दुकान पर उनका चित्र विराजमान था। कैलेण्डरों में उनकी तस्वीर थी, तो अखबारों के मुखपृष्ठ उनके चित्र से सुसज्जित थे। दिलों में उनका चेहरा था, तो पोस्टरों में उनकी छाप थी। यहां वे थे, वहां वे थे, वे ही वे थे। वे कहां थे, यह उलझाने वाला प्रश्न है। सही प्रश्न यह है कि वे कहां नहीं थे? उनकी यह व्यापकता अंग्रेज दिमाग को किस तरह झनझना रही थी? भगतसिंह के चित्र जब्त कर लिए गये थे, चाहे वे कहीं भी छपे थे और वे पर्चे, पोस्टर और पुस्तकें भी, जिनमें भगतसिंह की चर्चा थी। भगतसिंह को लाहौर के फांसी-घर में फांसी लग चुकी थी, पर अंग्रेज सरकार उन्हें देश की जमीन के हर टुकड़े पर फांसी देने में लगी हुई थी।

कितनी बेचैन थी वह? वह कितनी बौखलायी हुई थी। होशियारपुर का अंग्रेज सुपरिटेंडेंट घोड़े पर जा रहा था, दूर से उसने एक पनवाड़ी की दुकान पर भगतसिंह की तस्वीर देखी। वह घोड़े से कूद कर दौड़ते हुए दुकान पर पहुंचा और उसे खींचकर उसने नीचे पटक दिया। उछलकर वह उस पर खड़ा हो गया और बहुत देर तक पैरों से मसलता रहा। लोग भौचक्के हो देखते रहे। क्या वह किसी पागल से कम था?

मार्च, 1931 के अन्त में करांची में, कांग्रेस का जो अधिवेशन सरदार बल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में हुआ, उसमें पहला प्रस्ताव भगतसिंह के संबंध में ही था। उसमें प्रत्येक प्रकार की राजनीतिक हिंसा से अपने आपको अलिप्त रखते हुए, उनका विरोध करते हुए भगतसिंह और उनके साथियों की वीरता और आत्मत्याग की प्रशंसा की गई थी। उपर्युक्त शब्दों का वहां पर विरोध हुआ था, पर भगतसिंह के महान पिता किशनसिंह मंच पर उपस्थित थे और इस प्रस्ताव पर बोले भी थे। युवक कांग्रेस में जब यह

प्रस्ताव आया तो उसमें से वे शब्द निकाल दिये गये थे, पर भगतसिंह के बलिदान की सबसे बड़ी उपलब्धि तो थी, कांग्रेस में मनुष्यों के मौलिक अधिकारों का प्रस्ताव, जिसमें समाज की आर्थिक अवस्था पर प्रकाश डाला गया था। भगतसिंह ने अपने वक्तव्यों में, नारे में और दूसरे पोस्टरों आदि में मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण करने वाली समाज व्यवस्था पर जो हथौड़े मारे थे, इस प्रस्ताव में उनकी निश्चित प्रतिध्वनि थी।

कराची कांग्रेस में गांधीजी अपनी लोकप्रियता के सर्वोच्च शिखर पर थे। वहां गांधीजी के दर्शन के लिए चार आने का टिकट खरीद कर एक विशेष समारोह में जो दर्शक आये थे, उनकी संख्या चालीस हजार थी और उनसे दस हजार रुपये प्राप्त हुए थे, पर कांग्रेस के इतिहास लेखक और कांग्रेस के एक बड़े नेता श्री पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है—"यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भगतसिंह का नाम भारत-भर में उतना ही लोकप्रिय था, जितना गांधीजी का।" फिर यह बात भी स्पष्ट है कि तब से समय की आंधियों ने इतनी धूल उड़ाई है कि प्रतिष्ठा के अनेक स्तूप उसमें दब गये हैं, पर भगतसिंह की लोकप्रियता आगे-आगे—और आगे बढ़ती चली गई थी, बढ़ती चली जा रही है। इतिहास का महत्वपूर्ण प्रश्न है कि उस प्रतिदिन पुष्ट होती हुई लोकप्रियता का रहस्य क्या है ?

क्या इसका कारण यह है कि भगतसिंह शहीद हुए, हंसते-हंसते फांसी चढ़े ? यह कारण उचित है, पर भगतसिंह से पहले, उनके साथ और उनके बाद भी बहुत से देश-भक्त हंसते-हंसते फांसी चढ़े हैं, इसलिए हमें भगतसिंह की लोकप्रियता का रहस्य खोजने के लिए गहराई में उतरना पड़ेगा।

हर देश का एक सामूहिक स्वभाव होता है, रुचि होती है, सम्मान होता है। हमारे देश के स्वभाव, रुचि और सम्मान के अनुसार हमारे मन में पूजित होता है, संत, आदर पाता है वीर और लोकप्रिय होता है नेता। संत की शक्ति उसका आचरण है, वीर की शक्ति उसका आक्रमण है और नेता की शक्ति उसका निर्देशन है। भगतसिंह के मृत्यु के प्रति निर्लिप्तता में—जिसका गहरा अर्थ है समष्टि के लिए व्यष्टि का स्वेच्छा से समर्पण—संत सिद्ध हुए, शत्रु पर आक्रमण करने मे वीर सिद्ध हुए

और शब्दों एवं कार्यों के द्वारा आक्रमण पर आक्रमण की योजना बनाने और उससे जनता को प्रबुद्ध एवं प्रशिक्षित करने में नेता सिद्ध हुए।

उनकी असाधारण लोकप्रियता का यही रहस्य है। अपनी-अपनी मात्रा में अपनी-अपनी जगह और अपने-अपने ढंग पर इस तरह की लोकप्रियता, जागरण एवं संघर्ष की इस शताब्दी में लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और लालबहादुर शास्त्री को प्राप्त हुई।

भगतसिंह के व्यक्तित्व को हम एक और दृष्टि से भी देखें। बूढ़े आदमी शिष्ट को पसन्द करते हैं, युवक वीर को और युवतियां सजीव हंसमुख को। भगतसिंह शिष्ट थे, वीर थे, हंसमुख थे। इसलिए उन्हें व्यापक रूप में उस श्रेणी की लोकप्रियता मिली, जिसमें एक प्रकार का देवत्व आ जाता है या जिसे हम चालू भाषा में 'हीरो' शब्द से प्रकट करते हैं।

श्री शिववर्मा ने इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है—"समस्त वीरों में भगतसिंह को बलिदान का प्रतीक क्यों माना जाता है? महान वीरों की पंक्ति में वे ही क्यों सबसे अधिक सम्मान, सबसे अधिक स्नेह और प्रेम के पात्र समझे जाते हैं?"

भारत में समाजवादी आंदोलन के महान नेता स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्र देव ने इसका उत्तर इन शब्दों में दिया है—

"भगतसिंह और दूसरे क्रांतिकारियों में यह एक बड़ा अन्तर है कि उन्होंने असाधारण रूप से इस बात की घोषणा की कि भारत को गुलामी के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार प्राप्त है। उनका शौर्य एक विशेष वस्तु है, जो हमारे लिए सदा एक प्रेरक उदाहरण रहेगा। जो राष्ट्र दीर्घकाल तक पराधीन था, जिसमें राष्ट्रीय तत्व शेष नहीं रह गया था, जो यह सोचता था कि विदेशी शक्ति का मुकाबला करने का साहस मुझ में नहीं है और जो अंग्रेजों का चेहरा देखकर भयभीत हो जाता था, उस राष्ट्र के लिए शूरवीरता के ऐसे उदाहरण प्रिय क्यों न हों? भगतसिंह का नाम सुनते ही हृदय में बिजली-सी कौंध जाती है। थोड़ी देर के लिए मानवीय दुर्बलताएं दूर हो जाती हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको भावुकता के एक नये संसार में पाता है।

बाईस

एक सवाल उठता है—क्या भगतसिंह जन्मजात क्रांतिकारी थे ? क्या वे पैदायशी नेता थे ?

यह जन्मजात क्या चीज है ? अमुक आदमी जन्मजात लेखक है, अमुक आदमी जन्मजात वैज्ञानिक है, इस प्रकार के वाक्य बहुत के साथ जोड़े गए हैं, पर इनका सार क्या है ?

यह प्रश्न महत्वपूर्ण है । इस महत्व को हम इस प्रश्न से साफ-साफ अनुभव कर सकते हैं कि क्या कोई व्यक्ति अपने जन्म से पहले भी कुछ सीख सकता है ? किसी प्रकार की मनोवृत्ति अपने नन्हे से मानव से ग्रहण कर सकता है ।

भारत के दर्शन में एक उत्तर दिया—पुनर्जन्म ! जब हम जन्म लेते हैं तो क्या नया शरीर धारण करते हैं, पर हमारी आत्मा, हमारे जीवन की चैतन्य शक्ति नई नहीं होती । वह पहले अनेक बार शरीर धारण कर जीवन भोग चुकी होती है । उन जीवनों के कर्म संस्कार उसके साथ होते हैं, जो इस जीवन में उसे प्रभावित, प्रेरित करते हैं ।

यह दर्शन की बात है, विश्वास की बात है । जिनका विश्वास इस पर टिक जाए, उनके लिए सब कुछ है, जिनका विश्वास न टिके, उनके लिए कुछ नहीं है ।

भारतीय साहित्य में इसका एक और समाधान है—वह है अभिमन्यु । अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु जब अपनी माता के गर्भ में था तो अर्जुन ने एक दिन सुभद्रा को चक्रव्यूह तोड़ने की विधि सुनाई । चक्रव्यूह को तोड़कर उसमें घुसने की बात सुभद्रा ने ध्यान से सुनी, पर उससे बाहर निकलने की बात जब वे सुना रहे थे तो सुभद्रा सो गई । इसी कारण महाभारत के युद्ध में अभिमन्यु कौरवों के बनाए चक्रव्यूह में घुस तो गया, पर निकल नहीं सका वहीं मारा गया । महान काव्य महाभारत की यह कथा कहती है कि जन्म से पहले भी मनुष्य वातावरण का प्रभाव ग्रहण करता है ।

पाकिस्तान के संस्थापक और भारत के बंटवारे के विधाता श्री मुहम्मद अली जिन्ना की मनोवृत्तियों का एक चमत्कारी विश्लेषण हुआ

था। जिन्ना काठियावाड़ की खोजा जाति में जन्मे थे। यह जाति हिन्दुओं की एक उपजाति थी। इसकी श्रद्धा एक मुसलमान संत में हो गई। हिन्दू इसे गैर मानने लगे, पर इस जाति के लोगों का मानसिक स्तर हिन्दू ही रहा। हिन्दुओं जैसा नाम, आपस में मिलने पर हिन्दुओं जैसा ही अभिवादन, सलूनों के त्यौहार पर घरों पर 'राम-राम' लिखना, गोबर से घर लीपना और हिन्दू पंडित को बुला कर विवाह कराना। गुरु मुसलमान, जीवन-आचार हिन्दू—यही रूप था इन लोगों की सामाजिक जिन्दगी का।

उन्नीसवीं शताब्दी में खोजा जाति में कुछ ऐसे बुजुर्ग थे, जिन्होंने अपने सामाजिक जीवन के इस द्वेष को समझा और प्रयत्न किया कि पूरी तरह हिन्दू बन कर रहा जाए। उन्होंने अपनी जाति में बात चलाई तो उसे सभी तरह से समर्थन मिला। तब हिन्दू समाज के कर्णधारों से कहा गया कि वे हमें ग्रहण करें, हम उनके ही हैं। बात शास्त्रों पर पहुंची। शास्त्रों के सर्वेसर्वा थे पंडित लोग। पंडितों की राजधानी थी काशी। काशी के पंडितों से इस पर व्यवस्था मांगी गई। उन्होंने व्यवस्था दी, खोजा लोग हिन्दुओं में स्वीकार नहीं किए जा सकते।

खोजा जाति में इसकी बहुत तीव्र प्रतिक्रिया हुई। हिन्दू-मत के जो चिह्न जाति में थे, उन्हें तेजी से हटाया गया। नाम बदले गए। दरवाजों से राम नाम मिटाए, पंडितों की जगह मौलवी ने ली। खोजा जाति ने हिन्दुओं से पूर्ण विच्छेद की नीति अपना ली। जब यह प्रतिक्रिया अपने पूरे उग्र रूप में काम कर रही थी, तब जिन्ना का जन्म हुआ और इस प्रकार जिन्ना जन्मजात पृथकतावादी, हिन्दू-विरोधी बने।

अभिमन्यु और जिन्ना के उदाहरण कहते हैं कि मनुष्य अपने जन्म से पहले भी मनोवृत्तियां ग्रहण करता है। अनुभवों और लोक-कथाओं में इसके और भी उदाहरण मिलते है। यही पृष्ठभूमि है, इन प्रश्नों की कि क्या भगतसिंह जन्मजात क्रांतिकारी थे? क्या भगतसिंह पैदायशी नेता थे?

हां, भगतसिंह जन्मजात क्रांतिकारी थे और पैदायशी नेता भी, उन्हें किसी ने क्रांतिकारी बनाया नहीं, वे पैदा ही हुए थे क्रांति का नेतृत्व करने के लिए।

राजभक्ति की नरम राजनीति ने जब गरम राजद्रोह की ओर लोक-

मान्य तिलक के नेतृत्व में पहली अंगड़ाई ली, तो सरदार किशनसिंह और सरदार अजीतसिंह उनके सीधे सम्पर्क में आए। महाराष्ट्र से लौटकर वे दोनों अपने छोटे भाई सरदार स्वर्णसिंह से मिले और अन्य बहुत से मित्रों की एक गोष्ठी में तीनों ने देशव्यापी क्रांति की योजना पर विचार-विमर्श किया। दो बातें सामने आई—क्रांतिकारी संस्था का संगठन और ऐसे पुत्रों का जन्म, जो आगे चलकर क्रांति का नेतृत्व करें। सरदार अजीतसिंह का यह वाक्य भगतसिंह के वंश की धरोहर है, "संस्था का काम हम सब करेंगे, पर दूसरा काम हमारे खानदान में तो भाई साहब सरदार किशनसिंह ही कर सकते हैं।" क्या भगतसिंह के जन्म से पहले ही उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व का शिलान्यास न था ?

सरदार किशनसिंह के पिता सरदार अर्जुनसिंह राष्ट्रीय आर्य-समाजी क्रांति (उस युग के वातावरण में हम देखें, बाद के नहीं) के उग्रनेता थे। वे हवन के बाद वीर पुत्रों के लिए भगवान से नित्य प्रार्थना किया करते थे। कौन नहीं मानेगा कि इस वंश में विशेष वातावरण बनता था।

भारतमाता सोसायटी की स्थापना हुई। उसके जलते-दहकते कार्यक्रम चालू हो गए। अंग्रेज सरकार कांपी और तीनों भाइयों पर खड़हपस्त हुई। सरदार किशनसिंह और सरदार स्वर्णसिंह जेल भेजे गये। सरदार भगतसिंह का घर श्री सूफी अम्बाप्रसाद, श्री लाला हरदयाल और श्री लाला लालचंद जैसे प्रतिभा-पुत्रों और क्रांतिवीरों के लिए चौपाल बन गया। जिन दिनों उस घर में हर समय क्रांति की चर्चा होती थी, बलिदान के गीत गाए जाते थे, उन्हीं दिनों भगतसिंह अपनी माता के गर्भ में थे। जो चिनगारियां चारों ओर बोई जा रही थीं, क्या उनके अंकुर भगतसिंह के मानस-क्षेत्र में अंकुरित नहीं हुए होंगे ?

भाग्य का कैसा संकेत है, इतिहास का कैसा चमत्कार है कि जिस दिन भगतसिंह का जन्म हुआ, ठीक उसी दिन सरदार अजीतसिंह का निर्वासन समाप्त हुआ। सरदार किशनसिंह और सरदार स्वर्णसिंह जेल से छूटे। क्या भाग्य की यह स्पष्ट घोषणा न थी कि आज विद्रोह प्रणेताओं के घर गुलामी का विजेता और क्रांति का महान नेता जन्मा है ? इसी पृष्ठभूमि में हम कह सकते है कि भगतसिंह जन्मजात नेता थे।

तेईस

किसी के व्यक्तित्व को सही-सही परखने के लिए स्वभाव भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। एक आदमी परिस्थितियों के प्रभाव से या आवेश में आकर कोई अद्‌भुत काम कर सकता है, पर इस काम को हम उसका व्यक्तित्व नही कह सकते। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। एक आदमी बेहद कंजूस था। एक बार उसका इकलौता बेटा बीमार पडा, पर उसने डाक्टर को नहीं बुलाया। धर्मार्थ औषधालयों से लाकर वह उसे दवा पिलाता रहा, पर एक बार उसने प्रतिक्रिया का शिकार होकर एक मंदिर बनवाने में कई हजार रुपये खर्च कर दिए। बात साफ है कि यह मंदिर उसके व्यक्तित्व को दानी नहीं बना सकता, क्योंकि उसका स्वभाव तो कंजूसी ही है।

भगतसिंह के क्रांतिकारी, साहसी व्यक्तित्व को एक ओर रखकर हम उनके व्यक्तित्व को स्वभाव के शीशे में देखें, तो वे एक सरस, सजीव, मसखरे, सहृदय, संतुलित और उदार मानव थे। स्वभाव को परखने के लिए प्रतिदिन के जीवन को परखना ही सबसे अच्छा तरीका है, क्योंकि वह बनावटीपन से बचा हुआ अपने मूल रूप में हमारे सामने होता है।

पैतृक संस्कार, गम्भीर अध्ययन और निरंतर चिन्तन ने उन्हे सुलझे हुए विचारों का राजकुमार बना दिया था। उनकी निर्णय-शक्ति बहुत शानदार थी। वे बात की तह तक पहली ही नजर में पहुंच जाते थे। आने वाली परिस्थितियों को इतने विस्तार से आंक लेते थे कि उठने वाली परिस्थितियों का समाधान पहले से ही उनके पास रहता था। इसके होते हुए भी वे जिद्दी या कट्टर नही थे। किसी भी बात पर वे किसी के साथ भी बातचीत करने को, अपना दृष्टिकोण समझाने को और दूसरे को समझने को सदा तैयार रहते थे। उनकी बात ही उनकी दृष्टि में सही हो, पर बहुमत से उसके विरुद्ध निर्णय हो जाए, तो बहुमत के उस निर्णय को वे अपने ही निर्णय की तरह अमल में लाते थे। उसकी सफलता के लिए भरपूर प्रयत्न करते थे। इसके बाद वह सफल हो जाए तो अपनी भूल मान लेते थे। उनके इस स्वभाव ने उन्हें आतकवादी गुप्त

दल में भी प्रजातान्त्रिक वातावरण बनाने में अपार सफलता दी थी। सफलता का बाहरी रूप यह था कि दल का हर आदमी अपने को समान महत्त्वपूर्ण समझते हुए भी उनके प्रति आदरपूर्ण व्यवहार रखता था। वे दूसरों की भावना को दबाकर ऊपर उठने में विश्वास नहीं रखते थे, दूसरों में सद्भाव जगाकर प्रभाव जमा लेते थे, इसीलिए उनका प्रभाव कृत्रिम नहीं, सहज था, हार्दिक था।

निश्चयों के प्रति उनमें ऐसी अटलता थी, जैसे धार्मिक दृष्टि के मनुष्यों में धर्म के प्रति होती है। जो निश्चय हो गया, उसमें न वे ढील करते थे, न ढील सहते थे। कोई ढील करे तो उन्हें गुस्सा आ जाता था। बहुत कुछ कहते-सुनते थे। इस स्थिति में भी यह ध्यान रखते थे कि किसी के आत्माभिमान को ठेस न लगे। किसी के हृदय को दुःख न पहुंचे। यदि यह महसूस होता कि उनकी बात से किसी को चोट लगी है तो वे हंसी-खुशी का वातावरण बना कर उसे प्रसन्न करने की कोशिश करते थे। इससे काम न चले तो गले में हाथ डालकर माफी मांग लेते थे और यह मानते हुए भी कि मेरी ही बात ठीक थी, उसे खुश करना अपनी जिम्मेदारी समझते थे। इसका परिणाम यह होता था कि गुस्से में जिसे वे डांटते थे, बाद में वह उनका पहले से अधिक आदर करने लगता था। उनके स्वभाव में सचाई और सद्भावना का बड़ा सलोना संगम था। यह संगम इतना गहरा था कि जो भी उनसे मिलता था, उनका हो जाता था, उन्हें प्यार करने लगता था। मोटे तौर पर वे अंग्रेजों के दुश्मन थे, पर साण्डर्स-वध और असेम्बली बम-काण्ड के सिलसिले में फांसी का हुक्म होने के बाद भी बहुत से अंग्रेज स्त्री-पुरुष उनकी काल-कोठरी में उनसे मिलने आते थे। भगतसिंह उनसे दिल खोलकर मिलते थे, प्यार से बातें करते थे, खूब हंसते थे और उन्हें हंसाते थे। आने वाले अंग्रेज उनसे बातें करते समय भूल जाते थे कि वे अपनी जाति के शत्रु से मिल रहे हैं। उन्हें लगता था, वे अपने किसी मित्र से मिल रहे हैं। उनके द्वारा किए गए मजाक इतने शिष्ट और मन को भाने वाले होते थे कि उनसे मिलने वाले हर व्यक्ति की यह इच्छा होती थी कि भगतसिंह उनसे मजाक करें।

जेल के जो अफसर उनकी देखभाल करते थे, उन्हें जेलों का अंग्रेज इन्स्पेक्टर जनरल हुक्म देता था कि वे भगतसिंह को जरा भी लिफ्ट न दें, रियायत न दें। आरम्भ में वे उनसे तने-तने रहते थे, पर भगतसिंह के स्वभाव की गम्भीरता और सरलता उन्हें पहले सम्पर्क में ही ढीला, सहानुभूतिशील और सहायक बना देती थी। वे खतरा उठाकर भी उन्हें सुविधायें देते थे, उनका आदर करते थे, उन्हें अपना आदरणीय मित्र मानने लगते थे। लाहौर जेल के बड़े जेलर खान बहादुर मुहम्मद अकबर कहा करते थे कि उन्होंने अपने पूरे जीवन में भगतसिंह जैसा श्रेष्ठ मनुष्य नहीं देखा। अंग्रेज अफसरों की पत्नियां उन्हें देखने आती थीं। इसका साफ अर्थ यह है कि अंग्रेज अफसर भी घर जाकर उनकी विशिष्टता स्वीकार करते थे। उनके स्वभाव में शालीनता इतने ऊंचे दर्जे की थी, उनके बात करने का ढंग इतना संतुलित था कि उनसे नाराज होकर या उनके बारे में बुरी छाप लेकर कोई जा ही नहीं सकता था।

उदासी के वे दुश्मन थे। उदासी उनके पास फटक नहीं पाती थी। उनके सामने अच्छी या बुरी जैसी भी परिस्थितियां आईं, उन्हें अपने अनुकूल बना लिया। वे मजाक की बात पर तो मजाक करते ही थे, पर वैसी बात न हो, तो वैसा वातावरण तैयार कर देते थे। और फिर उसी वातावरण मे डूब जाते थे, दूसरों को डुबा देते थे। लाहौर की बात है। भगतसिंह, विजयकुमार सिन्हा और भगवानदास माहौर एक सभा से लौट रहे थे। एक सिनेमा हाल में अमेरिका के हब्शी गुलामों पर होने वाले अत्याचारों पर लिखी हुई प्रसिद्ध पुस्तक 'अंकल टामस केबिन' की फिल्म चल रही थी। अत्याचारों के संघर्ष पर यह बड़ी मार्मिक पुस्तक है। पोस्टर पर फिल्म के बारे में पढ़कर भगतसिंह बोले—"यह फिल्म जरूर देखनी चाहिए।"

जैसे चारों दिशायें मुंह फाड़ कर एक साथ बोल उठीं—'फिल्म तो देखनी चाहिए, पर पैसे कहां हैं?' देश के राजनीतिक इतिहास की रोमांचकारी घटना साण्डर्स-वध की तैयारी हो रही थी, पर उस घटना के विधाता एक-एक पैसे को चुटकी में दबाकर जी रहे थे। दल के नेता चन्द्रशेखर आजाद सबको खाने के लिए चार आने रोज देते थे। दो आने

में एक समय का भोजन मिल जाता था उन दिनों। दो दिन के खाने के एक रुपये आठ आने भगवानदास माहौर के पास थे और सिनेमा के तीन टिकट बारह आने में मिल सकते थे, पर फिर तीनों के एक दिन के भोजन की क्या व्यवस्था होगी? फिर आजाद का यह आदेश कि ये पैसे खाने के अलावा और किसी काम में खर्च न हों, उन्हें क्या जवाब दिया जायेगा।

माहौर जी ने पैसे देने से साफ इन्कार कर दिया, पर भगतसिंह को दुश्मन की हुंकार ही प्रभावित न करती थी तो दोस्त की इन्कार क्या करती? भगतसिंह ने कजा पर एक सुन्दर प्रवचन दिया और बताया कि एक क्रांतिकारी के लिए गुलामों के मुक्ति संघर्ष की फिल्म देखना क्यों आवश्यक है? भगतसिंह, भगतसिंह थे तो भगवानदास भी भगवानदास थे। उन्होंने अनुशासन की पताका को और ऊंचा किया और पैसे देने से साफ इन्कार कर दिया। भगतसिंह हार मानने वाले कहां थे। उन्होंने कला के प्रवचन को अन्धे अनुशासन के विरुद्ध धुंआधार भाषण में बदल दिया, पर भगवानदास माहौर के कान इतने मजबूत निकले कि उन्होंने भगतसिंह का भाषण दिल तक पहुंचाने से साफ इन्कार कर दिया। सचमुच बहुत मजबूत संदूक में बन्द थे पैसे! अब मामला गरमागरम बातों पर पहुंच गया, पर हाय रे दिल! बढ़ रहे थे तीनों उस सिनेमा की तरफ।

भगतसिंह अब हाथापाई और चेलेंज के अभिनय पर पहुच गये थे, पर भगवानदासजी एक ही मुद्रा में, अभिनय का क्लाइमेक्स आ गया—"सड़क पर हाथापाई करना ठीक नहीं है। लो, नहीं मानते तो पैसे ले लो, पर यह बात साफ है कि मैं पैसे राजी से नहीं दे रहा हूं, तुम मुझसे जबर्दस्ती छीन रहे हो।"

भगवानदास की अदा पर भगतसिंह निहाल हो गये और हंसकर बोले—'जबर्दस्ती पैसे छीन नहीं रहा हूं, यह भी समझ लो कि तुम्हें पीटकर चवन्नी वाली तीन टिकट लाने भी भेज रहा हूं।" भगवानदास जी की भलमनसाहत के क्या कहने? यह भी मान लिया उन्होंने। पर सिनेमा की खिड़की पर जो लम्बे-चौड़े पंजाबी भाई जूझ रहे थे, उन पर

इस भलमनसाहत का कोई असर नहीं पड़ा और वे बारह आने मुट्ठी में दबाए लौट आये। अब भगतसिंह का नम्बर था। उन्होंने कोट उतारा, कमीज की आस्तीनें चढ़ाई, एक रुपये का नोट और अठन्नी मुंह में दबाए धक्का-मुक्की की उस भीड़ में घुस पड़े। लौटे तो तीन टिकट उनके हाथ में थे। पर पैसा एक नहीं। बात यह हुई कि चवन्नी के टिकट खत्म हो जाने के कारण वे अठन्नी के टिकट ले आये थे। अब तसवीर भी उनके सामने थी और दो दिन का उपवास भी।

सिनेमा से बाहर निकले तो पेट के भीतर भूख उभरी, पर उस पर ध्यान देने का अर्थ ही कुछ न था, क्योंकि यह ऐसा यथार्थ सामने था कि भूखे तो कल भी रहना है, पर आजाद जी से क्या कहेंगे ?

भगतसिंह वार्तालाप की कला में पण्डित थे। उनकी सजीवता और हंसमुख बातों की ऐसी रसमलाई बना देते थे कि अनायास ही गले उतर जाए। निवास पर पहुंचते ही बिना और कोई बात किये भगतसिंह ने फिल्म की कहानी आजाद को सुनानी आरम्भ की। गुलामों का संघर्ष और धनपतियों का अत्याचार दोनो ही मार्मिक थे, पर भगतसिंह की शैली ने तो उसमें रोमांच के सितारे ही जड़ दिये। तब संक्षेप में उपसंहार आया—"असल में इस कहानी की फिल्म हर एक क्रान्तिकारी को देखनी चाहिए। इसलिये हम देखकर आ रहे हैं।" आजाद मुस्कराए, नाराजगी का खतरा भी टला और खाने के पैसे भी दुबारा मिल गये।

उनकी बातचीत के प्रभावशाली होने का एक और भी कारण था। वे स्वयं भी बहुत अच्छे अभिनेता थे। अनेक नाटकों में उन्होंने सफल भूमिकाएं निभाई थीं। उनका प्रसिद्ध 'पगड़ी वाला' चित्र नेशनल कालेज लाहौर में ड्रामा क्लब के मेम्बरों के ग्रुप फोटो में से लिया गया है। 'भारत-दुर्दशा' नाटक में तो उन्होंने अपने अभिनय से दर्शकों को मुग्ध ही कर लिया था। रूखे उतार-चढ़ाव और साधारण अंग-विन्यास में उनकी नाटकीयता झलकती थी। इन सबसे गहरा रहस्य था उनकी हार्दिकता। वे जो महसूस करते थे, वही कहते थे। इसलिए उनकी बात उनके दिल की गहराइयों से उठती थी और दूसरे के दिल की गहराइयों मे उतर जाती थी।

साहस उनके स्वभाव का अभिन्न साथी था। जब वे गांव के स्कूल में पढ़ते थे, तब भी यदि लड़कों को आपस मे लड़ते देखते तो फौरन बीच-बचाव कर लड़ाई समाप्त करा देते। उनके पढ़ने के साथ-साथ उनका यह साहस भी बढ़ता गया। 1925 में दिल्ली के 'वीर अर्जुन' सम्पादन विभाग में कार्य करते थे और श्री दीनानाथ सिद्धांतालंकार के साथ एक चौबारे मे रहते थे। उन्हीं के शब्दों में, "वे मितभाषी और बड़े अध्ययनशील थे। खाली समय में और रात को प्राय: राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक पुस्तकें पढ़ते। सिनेमा, खेल-तमाशे देखने का शौक नही था। विवाद कभी नहीं करते थे। समाचार तैयार करने के काम में चुस्त थे, जीवन अत्यन्त सादा और संयमपूर्ण था। निजी आवश्यकताएं बहुत साधारण थीं। सांप्रदायिक दंगों में मैने उनमें अद्‌भुत स्फूर्ति देखी। वे चांदनी चौक की दोनों पटरियों पर आमने-सामने मरने-मारने की भीड़ को समझाते-बुझाते निर्भयतापूर्वक चले जाते थे। मैं उन्हें रोकता तो कहते—देशवासियों की सेवा में अगर मेरी जान भी चली जाए, तब भी चिन्ता की कोई बात नही। दंगे के दिनों में कई बार मै कार्यालय जाने का साहस नहीं कर सका, पर वे पूरी निश्चिन्तता और निर्भयता से चले जाते थे और अपने साथ मेरा भी काम कर आते थे।"

श्री दीनानाथ सिद्धांतालंकार के शब्दों में—"वे अन्दर रात में चौबारे की छत पर अकेले बैठे रोते रहते थे। बहुत दिन तक मैं इसे उनकी घरेलू परिस्थिति का फल समझता रहा, एक दिन रात में कोई बारह बजे मेरी आंखें खुलीं तो वे सिसकियां भर-भर कर रो रहे थे। मैंने उन्हें धीरज बंधाया। तब रोने का कारण पूछा तो बहुत देर तक चुप रहने के बाद बोले—"मातृभूमि की इस दुर्दशा को देख कर मेरा दिल छलनी हो रहा है। एक ओर विदेशियों के अत्याचार हैं, दूसरी ओर भाई-भाई का गला काटने को तैयार है। इस हालत में ये बंधन कैसे कटेंगे ?"

जो आदमी एकांत मे घंटों रोता था, वही दिन भर हंसी के गुब्बारे उडाता था। सुना है स्वाति नक्षत्र मे आकाश से गिरी बूद सांप मे मारक विष और सीप मे मूल्यवान मोती को जन्म देती है। शायद राष्ट्र का दर्द ही था, जो आंखों मे आंसू बनकर बिखर आता था। श्री भगवानदास

माहौर की नाक और होंठ जरा भारी थे। आगरा में पहली बार जब भगतसिंह ने उन्हें देखा तो बोले—"यस डरविन सीम्स टू बी करेक्ट। ही मे बी दे मिसिंग लिंक। हां डरविन का कहना ठीक मालूम होता है। बन्दर और आदमी के अन्दर खोई हुई कड़ी की पूर्ति करने वाला यह हो सकता है।" सुन कर सब हंस पड़े। फिर उन्होंने माहौरजी को साथ बुलाकर खूब प्यार से बातें की। माहौरजी के साथ इस तरह की छेड़छाड़ वे अक्सर करते थे। इस हार्दिक छेड़-छाड़ का जो प्रभाव माहौरजी पर पड़ा, वह उन्हीं के शब्दों मे इस प्रकार है—"मेरी अनुभूति तो यही है कि जैसे-जैसे भगतसिंह मुझे चिढ़ाते, वैसे ही वैसे उनके प्रेम के पोते से अनजाने में उनके समाजवाद का रंग मेरे हृदय पर चढ़ता जाता था।"

साफ-सुथरे कपड़े पहनना और अच्छा खाना उनका स्वभाव था, पर जिन दिनों ककोरी-केस के अभियुक्तों को जेल से छुड़ाने की योजना में दल के लोग आगरा मे इकटठे हो रहे थे, पैसे की बेहद तंगी थी, बर्तन की जगह मिट्टी के ठीकरे ही काम देते थे तो खाना कैसा होगा? फिर खाने का स्वाद तो पकाने से आता है, पर वहा ऐसे पाक-शास्त्री थे, जिन्हें यह भी पता न था कि दाल मे नमक के साथ हल्दी भी पड़ती है, दाल भी मिट्टी के बड़े ठीकरे मे रहती, उसी मे सब खाते थे।

भगतसिंह खाने बैठे तो खाना उनके गले से नीचे न उतरा। वे खाने को खराब बताएं तो उन्हें बुरा लगे, जो उसे शौक से खा रहे थे। फिर यह शान छोंकने जैसी बात हो। समता और अभिन्नता का वातावरण बनाए रखना भगतसिंह का स्वभाव था, इसलिए वे खाना छोड़ कर उठ भी नहीं सकते थे। खाना बन्द करके चुपचाप बैठे रहें तब भी सब कारण पूछें। सूझ भगतसिंह के स्वभाव की सदा संगिनी थी, उन्होंने पूर्ण प्रशन्नता की मुद्रा में पूछा—"आप लोग जानते है, लखनऊ के नवाब किस तरह खाना खाते थे?" आप ही बोले—"लीजिए मैं आपको दिखाता हू।" तीन उंगलियां खडी करके उन्होंने अंगूठे और पास की उंगली से मोटी रोटी का एक छोटा-सा टुकडा इस तरह नजाकत से तोडा, जैसे रोटी से उंगली छूना गुनाह हो, फिर उस टुकड़े को इस नफरत से मुह में रखा, जैसे हीरे की अंगूठी को मखमली डिब्बिया में रख रहे हो, तब धीरे-धीरे

मुंह चलाते रहे, आंखों के इशारे करते रहे और इसी तरह की बहुत-सी दूसरी बातें भी। नवाबी का यह नाटक तब तक चला, जब तक दूसरे लोगों ने पूरा खाना खाया। बाद में अदा के साथ उन्होंने कुल्हड़ उठाया और पानी के घूंट से उस टुकड़े को पेट मे पहुचा दिया। तब भरे पेट की डकार-सी लेते हुए उठे और ठेठ लखनवी टोन में बोले—"वल्लाह, क्या लजीज खाना है।" सब लोग खूब हंसे। दूसरे दिन भगतसिंह ने कहीं से रुपयों का प्रबन्ध करके भोजन की नई व्यवस्था कर दी।

गरीबी का अनुभव भगतसिंह को पुराना था, साथ ही उनकी हमदर्दी जन्मजात थी। उनके खेतों में जो मजदूर काम करते थे, वे उनमें इस तरह घुल-मिल जाते थे, जैसे वे उनमें से ही एक हों। उनके लिए सबसे बोझल घड़ी वह होती थी, जब वे मजदूर खाना खाते थे। वे उठकर उनका खाना देखते थे। उनके सूखेपन से दुःखी होते थे और उसे अपने खाने से चिकना और स्वादिष्ट भोजन बनाने की कोशिश करते थे। रुपये-पैसे से भी उनकी मदद करते रहते थे। मंगलसिंह नामक एक मजदूर पर धीरे-धीरे तीन हजार रुपये ऋण हो गया था।' इसमें से ज्यादा हिस्सा उसने शादियों मे लिया था। भगतसिंह ने यह सब रुपया माफ कर दिया और उससे कहा—"आइन्दा कर्जा लेकर शान दिखाने की कोशिश न करना।" यही आदमी सब कुछ होते हुए भी अब स्वयं घोर अभावों का जीवन जी रहा था, फिर भी कितना प्रसन्न था।

भगतसिंह के जीवन को हम जिस पहलू से देखें, जिस कोने से भी परखें, वह परख की हर कसौटी पर कुन्दन ही सिद्ध होते हैं। इसलिए तो डॉक्टर सतपाल के शब्द हैं—"मुझे कांग्रेस और नौजवान भारत सभा में प्रण के पक्के और अटल विश्वासी भगतसिंह के साथ काम करने का मौका मिला है। अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन में मुझे उन जैसा उपयोगी, जोशीला, चतुर, साहसी और समझदार युवक शायद ही मिलते। इश्तहार चिपकाने हों तो वे तैयार, दरियां बिछानी हों तो वे तैयार, भाषण करवाना हो तो आग बरसा दें। मतलब यह कि प्रत्येक कार्य वे योग्यता और लगन से करते थे। जनता पर उनके असीम प्रभाव का कारण यह था कि वे स्वार्थ, ईर्ष्या या लोभ से सदा दूर रहते थे। उनके चरित्र मे इतने

गुण थे कि मैंने उनमें शालीन पुत्र, प्रिय साथी और आदरणीय नेता को एक साथ पाया।"

उनका काम करने का अपना ही तरीका था। एक बार वे दीवारों पर इश्तहार चिपकाते फिर रहे थे। दीवार से लगा कर साइकिल खड़ी करते, सम्भलकर उस पर चढ़ते और तब ऊंचाई पर इश्तहार चिपकाते। उनके छोटे भाई कुलबीरसिंह भी साथ थे, उन्होंने पूछा—'नीचे काफी जगह है, फिर ऊपर क्यों चढ़ते है?" उत्तर मिला—"इसलिए कि एक भी इश्तहार जाया न जाए और उनका पूरा फायदा मिले, नीचे लगे इश्तहारों को अक्सर बच्चे फाड़ देते है।"

उनकी सतर्कता बहुत गहरी थी। दूसरों का ध्यान वे पूरा-पूरा रखते थे। साथियों के प्रति उनकी भावना इतनी गहरी थी कि छोटी-से-छोटी बात में भी साथी का पूरा ध्यान उन्हे रहता था। सेण्ट्रल जेल लाहौर से 3 जून, 1930 को उन्होंने अपने घर के पते पर श्री जयदेव गुप्ता को यह पत्र लिखा था—

सेण्ट्रल जेल
3-6-1930

मेरे प्यारे श्री जयदेव,

कृपा कर मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार कीजिए, कपड़े के उन जूतों और सफेद पालिश के लिये शीशी जो आपने भेजी है। आपके शब्दों में (जैसे कि श्री कुलबीर ने कहा) मैं आपको कुछ और चीजें लाने के लिए यह पत्र लिख रहा हूं। मुझे विश्वास है कि आप इसे महसूस नहीं करेंगे। कृपया देख लें कि क्या आप श्री बी० के० दत्त के लिए कपड़े का एक और जूता भेजने की व्यवस्था कर सकते है। (साइज नम्बर सात) लेकिन दुकानदार से वापसी की शर्त पर लेना, यदि इनके पैर में फिट न आए। यह बात मैंने आपके लिखते समय ही लिखी होती पर श्री दत्त उस दिन सरल भाव (इजी मूड) में नहीं थे, लेकिन मेरे लिए इसे अकेले पहनना बहुत मुश्किल है। इसलिये मैं आशा करता हूं कि अगली मुलाकात के समय एक और जूता यहां होगा।

साथ ही एक टवैल शर्ट (कमीज), जिनका साइज—छाती 34 हो, कमर 29 भेज दें। उस पर सेक्सपीरियन कालर हो और आधी आस्तीन हो। यह श्री दत्त के लिए चाहिए। क्या आप यह सोचेंगे कि हम जेल में भी अपने रहन-सहन के खर्चीले ढंग पर रोक नही लगा सके ? अन्ततः यह आवश्यकताएं हैं, विलासिताएं नहीं। नहान और व्यायाम करने के लिए किसी मुलायम कपड़े के बने दो लंगोट भी भेज दें और कपड़े धोने के साबुन की कुछ टिकियाएं भी। साथ ही कुछ बादाम और स्वान इक की एक शीशी भी।

सरदार जी के बारे में क्या खबर है ? क्या वे लुधियाना से वापस आ गए है ? इन दिनों में कचहरी बन्द रहेगी और मुकदमा आगे नहीं बढ़ेगा। यदि वे नहीं आए तो उन्हे लाने के लिए किसी को भेज दें। जो हो, उसके और मेरे मुकदमे का अन्त करीब ही है। कह नहीं सकता कि हमें एक-दूसरे से मिलने का और अवसर मिलेगा या नहीं, इसलिए उन्हें तुरंत बुला लें, ताकि वे इस सप्ताह मे मुझसे दो बार मिल सकें। यदि वे जल्दी नही आ रहे है तो कृपा कर कुलबीर और बहन जी को मुझसे मुलाकात के लिए कल या परसों भेज दें। मेरे मित्रों को मेरी याद दिलाना। क्या आप फारसी का एक 'कायदा' उर्दू अनुवाद सहित भेजने की व्यवस्था कर सकेंगे ? चार आने की सूची भी भेज दें।

—तुम्हारा भगतसिंह

एक पोस्टकार्ड में कितने चित्र हैं उनके व्यक्तित्व के। मानवीयता तो है ही, जो साथियों के साथ उन्हें एकात्म करती है, पर स्वभाव की सरसता और व्यक्तित्व की रंगीनी, जिसे सजीवता कहना ज्यादा सही भी है, पर इन सबसे बढ़ कर भी है कि वे हर बात की गहराई में बड़ी दूर तक जाते थे। आश्चर्य होता है कि जो आदमी स्वयं दौड़कर मौत के द्वार पर जा बैठा है, वह फारसी का कायदा (पहली पुस्तक) भी मगा रहा है और चार आने की सूची भी। सच तो यह है कि अपने स्वभाव की विशेषताओ से वे व्यक्तित्व की विभिन्न और विविध धाराओं के जीवन संग्रहालय थे।

इसकी पूर्ति करता है एक संस्मरण। भगतसिंह को फांसी का हुक्म होने पर बचाव कमेटी की अपील पर बहुत-सा धन एकत्र हुआ। भगतसिंह ने कमेटी की सेक्रेट्री लज्जावती जी को लिखा—"फांसी लगने वालों की चिन्ता छोड़ कर वह रुपया उन लोगों के नाम जमा कर दिया जाए, जिन्हें उम्रकैद की सजा हुई है।" दुनिया से जाने वाला एक इन्सान उनकी सुख-सुविधा की चिन्ता कर रहा था, जिन्हे दुनिया मे जीना है। तभी तो वह मरकर भी अमर हो गया और जीवन की कला का हमेशा के लिए एक महान पाठ बन गया।

उनको जीवन का चर्य था, शौक था। वे चादनी रात मे छत के एकान्त में ऐसे तल्लीन हो जाते कि समय की सुध-बुध ही न रहती थी। चांद से न जाने क्या बातें करते थे, घण्टों उसे देखते रहते और न जाने क्या सोचते थे। गाने का तो उन्हें बेपनाह शौक था। खुद भी गाते थे और गाना दिल लगा कर सुनते भी थे। श्री भगवानदास माहौर लिखते हैं—"अपने गाने के शौक के कारण मेरी भगतसिंह से अच्छी पटने लगी थी। यही तो एक बात थी, जिसमे मैं अपने आपको भगतसिंह से ज्यादा जानकार समझता था और भगतसिंह बड़े आग्रह से मेरा गाना सुनकर मेरे इस अभिमान को काफी गुदगुदाया करते थे। इसी में मुझे और मेरी मार्फत पण्डित जी को भी छेड़ने का अवसर निकाल लेते थे। पण्डित जी के डर के मारे मैं गजल जैसा गाना इच्छा रहते हुए भी गा न पाता था। भगतसिंह चुपके से कहते—"हां-हां, भाई कैलाश (दल का नाम) वह गजल तो सुना 'जब कफस से लाश निकली' और मैं भगतसिंह के अनुरोध का बल पाकर पहले धीरे-धीरे गुनगुनाकर, फिर बड़े मजे मे आकर पूरी उमंग से गाने लगता—

जब कफस से लाश निकली, बुलबुले नाशाद की,
इस कदर रोया कि हिचकी बध गई सैयाद की।
कमसिनी में खेल खेले नाम ले-लेकर तेरे,
हाथ से तुरबत बनाई पैर से बरबाद की।

इस पर पण्डित जी, माहौर को झिडकी देते तो भगतसिंह व्यंग्य से कहते—"पण्डित जी, बेचारा भारत माता पर बलिदान होने आया तो

क्या दिल घर पर रख आया है ? उनकी कोई हो, तो उसे साथ लाने की इजाजत तो आप देंगे नहीं ? ऐसी हालत में बेचारा उसका नाम लेकर हाथ से उसकी तुरबत बनाए और फिर पांव से उसे मेट दे ताकि आप उसे देख न सकें। यह न करे तो और क्या करे ?" और पण्डित जी भगतसिंह से उलझ पड़ते—"देखो रणजीत, तुम इसकी कमजोरी नहीं समझते, मैं समझता हूं। इससे ऐसी-वैसी बात न किया करो।" मौका देखकर मैं अपनी निर्दोषिता का भाव बना कर कहता—"पण्डित जी, इन्होंने ही तो मुझसे इसी गजल को गाने को कहा था।" पण्डित जी खिन्न होकर कहते—"यह अच्छी बात नहीं है।" और भगतसिंह मुंह फेरकर मुस्कराने लगते।

आश्चर्य यह है कि वे एक साथ दोनों बातों की पूर्ती करते थे। उनके शौक और विनोद साथ-ही-साथ चलते थे। यह शौक और यह छेड़-छाड़ यहां तक बढ़ गया कि एक बार उन्होंने माहौर जी से साथियों के बीच गाने को कहा। कहने का ढंग मजाकिया था। माहौर जी बोले—"मूड नहीं है।" इस पर भगतसिंह ने उन्हें बहुत चिढ़ाया तो भगतसिंह को उन्होंने घूंसा जड़ दिया। भगतसिंह उनके मुकाबले भीम थे। उन्होंने माहौरजी को धो दिया। सब साथियों ने बीच-बचाव किया। भगतसिंह ने कहा—"आक्रमण इन्होंने किया है, मैं तो आत्मरक्षा में लड़ा हूं। संधि स्वीकार है, पर मेरी शर्त यह है कि ये महाशय गाना गाएं।" माहौरजी अपना प्रसिद्ध मराठी गीत 'कुंटे गुंठला' गाने बैठ गये और भगतसिंह लेटे-लेटे सुनने लगे।

क्रांतिकारी दल में भगतसिंह अपने गाने के लिए प्रसिद्ध थे। यह गाना उनका एक शौक ही था। असेम्बली बम-काण्ड में भगतसिंह को आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया जा चुका था। श्री आसफअली एक वकील के रूप में दिल्ली जेल की काल-कोठरी में उनसे मिलने जा रहे थे। श्रीमती अरुणा आसफअली भी उनके साथ थीं। जब वे काल-कोठरी के पास पहुंचे तो उन्हें गाने की आवाज सुनाई पड़ी। अरुणा ने कहा—"कितना सुरीला कण्ठ और मधुर स्वर है। कोई बहुत प्रसन्नता से गा रहा है।" वे दोनों आगे बढ़े तो वह गायक उन्हें दिखाई दिया। गायक और कोई नहीं, स्वयं भगतसिंह थे। अपने गाने पर अपनी ही बेड़ियों से

ताल दे रहे थे। कितना दिव्य था वह दृश्य !

सिनेमा देखने का खूब शौक था उन्हें, यदि हाथ में कोई जिम्मेदारी का काम न हो और जब सिनेमा न जाना हो, न जा सकते हों, तब जहां हों, जिनके साथ हों, वहीं महफिल जम जाती थी और अहसासों, संवादों, सूक्तियों, शेरों और गजलों से भरी बातचीत की फिल्म चल पड़ती थी। ऐसी ही एक फिल्म का रेखाचित्र प्रस्तुत करते हैं श्री भगवानदास माहौर—

आरे के एक मकान में आजाद, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, बटुकेश्वरदत्त, शिववर्मा, विजयकुमार सिन्हा, जयदेव कपूर, डा० गयाप्रसाद, वैशम्पायन, सदाशिव आदि दल के सक्रिय सदस्य बैठे हैं। विनोद चल रहा है, विनोद का विषय है—कौन कैसे पकड़ा जायेगा और पकड़े जाने पर कौन क्या करेगा ?

ये हजरत (राजगुरु) तो सोते हुए ही पकड़े जायेंगे। हद हो गई जनाब चलते-चलते ही सो जाते हैं। इनकी आंख पुलिस लाकअप में खुलेगी और तब ये पहरे वालों से पूछेंगे—"मैं सचमुच में पकड़ा गया हूं या स्वप्न देख रहा हूं।"

मोहन (बटुकेश्वर दत्त) चांदनी रात में पार्क में चांद देखते हुए पकड़े जायेंगे और पुलिस वालों से कहेंगे—"कोई बात नहीं, मगर चांद है कितना सुन्दर !"

बच्चू (विजयकुमार सिन्हा) और रणजीत (भगतसिंह) किसी सिनेमा हाल में पकड़े जायेंगे और पुलिस वालों से कहेंगे—"जी हां, पकड़ लिया तो क्या गजब हो गया, अब खेल तो पूरा देख लेने दो।"

और पण्डित जी (चन्द्रशेखर आजाद) बुन्देलखण्ड की किसी पहाड़ी में शिकार खेलते हुए किसी मित्र बने सरकार-परस्त विश्वासघाती से घायल होकर बेहोशी की हालत में पकड़े जाएंगे। आजाद ने झिड़की की हंसी हंसी। भगतसिंह ने विनोद करते हुए कहा—"पंडित जी, आपके लिए दो रस्सों की जरूरत पड़ेगी। एक आपके गले के लिए और दूसरा इस भारी भरकम पेट के लिए।" आजाद तुरंत हंस कर बोले—"देख, फांसी जाने का शौक मुझे नहीं है, वह तुझे मुबारक हो : रस्सा-फस्सा तुम्हारे गले के लिए है। जब तक मेरे बम-तुल-बुखारा (पिस्तौल) मेरे

स है, किसने मां का दूध पिया है, जो मुझे जीवित पकड़ ले जाए !"

मृत्यु की ज्वालामुखी पर खेलने वाले भगतसिंह और उनके साथी कितने सजीव थे ! जीवन के प्रति वे किस संत से कम निर्लिप्त थे।

रसगुल्ला उन्हें बेहद प्रिय था। लाहौर षड्यंत्र मुकदमे के दिनों की बात है। 9 अप्रैल, 1930 को जतीन्द्र सान्याल ने अदालत से दरख्वास्त दी कि रसगुल्लों का एक पार्सल बंगाल से आया है, पर जेल अधिकारियों ने हमें यह कहकर उसे नहीं लेने दिया कि ये लेने लायक चीज नहीं है।

रसगुल्ले का नाम सुनते ही भगतसिंह का रोम-रोम खिल उठा। न्यायाधीश की ओर मुखातिब हुए और बोले—"द रसगुल्ला आर लाईंग आउट साइड विल यू टेक द ट्रबल आव एग्जामिनिंग देम ? इट इज ए ब्यूटीफुल सीन। यू मे जस्ट लुक ऐट देम। रसगुल्ला आर मोर इम्पोर्टेंट फार अस दैन दीज विटनेसेज। (रसगुल्ले बाहर पड़े हैं। क्या आप उनका निरीक्षण करने का कष्ट उठायेंगे ? यह एक सुन्दर दृश्य है। आप उन्हें जरा देखें तो। इन गवाहियों की अपेक्षा रसगुल्ले हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं।" रसगुल्लों की बात और भगतसिंह के बात करने का अभिनयपूर्ण सरस ढंग—सब इतने जोर से हंसे कि फांसी और कैद का भय सकुचाकर अपने में सिमट गया।

मुकदमे के दिनों का ही एक और संस्मरण प्रस्तुत करते हैं। श्री सत्यदेव विद्यालंकार—"अदालत की छुट्टी के समय मुलाकात के लिए सबको एक कमरे में बैंचों या जमीन पर बैठाया जाता था, जिससे एक-दूसरे से मिलने का अवसर बिना कठिनाई के मिल जाता था। एक दिन पुलिस इंस्पेक्टर ने मुझे भगतसिंह से बात करने से रोका, तो बड़े सुन्दर लहजे में बोल उठे—"अरे भाई, कल तो फांसी पर लटका दोगे और आज दो बात नहीं करने देते।" वह इंस्पेक्टर शरमा कर रह गया। अपने मुकदमे के लम्बे दौर में कभी एक बार भी सरदार उदास नहीं देखे गये और वह इतने प्रसन्नचित रहते थे कि किसी दूसरे को भी उदास नहीं रहने देते थे। मुकदमे की कार्यवाही में भी जब-तब पुलिस, पुलिस के गवाहों, पुलिस के अधिकारियों और मजिस्ट्रेटों पर भी चुटकियां भरते रहते थे। कभी-कभी तो उनके व्यंग्य-भरे विनोद पर सारी अदालत गूंज

उठनी थी। अपनी जिन्दादिली से वह अदालत के वातावरण को जिन्दा बनाए रखते थे।

बातें और भी सौ हैं पर लगता है कि उनके स्वभाव की सब विशेषताएं उनकी माता के इन शब्दों में समा गई हैं—"उनका स्वभाव ऐसा था कि इंसान क्या, उन्हें तो जानवर भी बेहद प्यार करते थे। मैं भैंस का दूध निकालकर आ जाती तो बहुत बार ऐसा होता कि अपने आनन्द के मूड में वे भैंस के पास जाकर कहते मौसी, दूध दे दे और थन पकड़कर बैठ जाते। मैं देख कर भौचक्की रह जाती कि दूध निकाल लेने पर भी भैंस और दूध उतार देती और वे बच्चों की तरह उसका थन मुंह में लेकर चूसने लगते।"

'हमसे बढ़कर जिन्दगी को कौन कर सकता है प्यार।
और अगर मरने पर आ जायें तो मर जाते हैं हम।
जाग उठते हैं तो सूली पर भी नींद आती नहीं।
वक्त पड़ जाए तो अंगारों पे सो जाते हैं हम।
मर के भी इस खाक में हम दफन रह सकते नहीं।
लाला ओ' गुल बनके वीरानों पे छा जाते हैं हम॥

—सरदार जाफरी

"हत्या, लूटपाट तथा आगजनी, अराजकता एवं असामाजिकता फैलाने वाले लोग क्रांतिकारी नहीं होते ! कुत्सित, वीभत्स एवं घृणित व्यवस्थाओं को विनष्ट कर मानवीय मूल्यों के निर्माता ही यथार्थतः क्रान्तिकारी होते हैं।"

–आचार्य भरतराम भट्ट

भगतसिंह